समर्पणम्

कष्टापाते प्रणिहितधियो नो जहत्यात्मनिष्ठां,
येषां निष्ठा भवति न चला वाति वामेऽपि वाते।
ते सर्वेऽपि प्रकृतिगुरवः पुष्पमालामिवार्घ्यां,
स्वीकृत्येमां मम लघुकृतिं कुर्वतां मां कृतार्थम्॥

समर्पण

जो स्थितप्रज्ञ कष्ट आने पर भी आत्म-निष्ठा नहीं छोड़ते, प्रतिकूल वातावरण से भी जिनका धीरज नहीं डोलता और जो स्वभाव से ही महान् हैं, वे मेरी इस छोटी सी कृति का अर्घ्य पुष्पमाला के रूप में स्वीकार कर मुझे कृतार्थ करें।

काव्यस्य रचयिता खलु रागद्वेषपराङ्मुख ऐहिकसुखनिरभिलाष सन्ततं विद्यानुशीलनेन तपश्चरणेन च लब्धसत्त्वोत्कर्ष एकाग्रेणैव मनसेदं काव्यं व्यरचयत्। अतः खल्वस्मिन् काव्ये सर्वेषां गुणानां सामानाधिकरण्यं सुलभं समपादि।

प्रस्तुतस्य खलु काव्यस्याधिकृतं कथावस्तु जैनागमेभ्यः कवयित्रा समग्राहि। तस्य खलु वर्णनं स्वयं कविनैव पृथगुपन्यस्तम्। तत एव सर्वं समाकलनीयम्। अतस्तत्र न व्यापार्यते लेखनी। केवलं समासेनेदं प्रस्तूयते मयका। महतां खलु समुदाचारो न लौकिकेन मानदण्डेन विचारणीयो भवति। तत्र पर्यनुयोगस्य नियोगस्य वा सर्वथाऽनवसरः। अतः खलु कथमन्तिमतीर्थङ्कराणां श्री महावीरस्वामिनामीदृशोऽभिग्रहः समजनीति न पृष्टव्यम्। फलं त्वस्माभिरत्र समीक्ष्यते—राजपुत्री चन्दनबाला बन्दीग्राहं गृहीतात्यन्तिकीं दुर्दशां समासादिता समुद्धरणीयासीत्। सत्यपि दैवस्य प्रातिकूल्ये दुःखदुर्दिनेन समाच्छन्नेऽन्तरिन्द्रिये श्रद्धाबीजमच्छिन्नमूलं व्यराजत तस्याः। अतः खलु महावीरस्वामिनां प्रसादस्तया समप्रापि। अभिग्रहस्य यान्यपेक्षितानि लक्षणानि, तानि सर्वाणि तस्यामुपलब्धानि केवलमश्रुपूर्णं विलोचनं विहाय। भिक्षार्थं तस्याः समीपमुपनते महावीरस्वामिनि सा खलु सहजया श्रद्धया महापुरुषभक्त्या चावर्जितहृदया हर्षस्य काष्ठामन्वभवत्। अश्रूणि विलीनानि। अतः खलु प्रत्यावृत्ते पुरुषोत्तमे नितरां शोकेन परिदूयमानचित्ताऽश्रूणां प्रवाहं स्वत प्रसरद्रूपमवरोद्धुं नालमभूत्। अश्रुप्रवाहमेव दूतं कृत्वा परचित्तज्ञानिनं महावीरस्वामिनं प्रति सन्देशं प्रेषितवती। तस्याः खलु महान्तं प्रणयं स्वाभाविकीं श्रद्धामतिशयितां भक्तिं चावगम्य महावीरस्वामिना पुनस्तत्सकाशं प्रत्यावृत्तेन तस्या हस्तान्माषा गृहीताः। साऽपि कृतार्था समजनि। सर्वा सम्पत्तत्क्षणमेव तया लब्धा। सर्वाः खलु विपदो निमेषमात्रेणैवास्तमुपागताः। महापुरुषस्य प्रसादलाभेन किंवा दुरधिगमं भवेत्। ऐहिकं पारत्रिकञ्च हितं कल्याणं सुखं क्षेमं सर्वमेतत् समधिगतं सुगतया राजसुतायां। एतदेव कथावस्तुनस्य खण्डकाव्यस्य।

ये सत्यश्रद्धाधीनिनो भविष्यन्ति, तेषामप्यायतिः कुशला क्षेमा कल्याणी च भविष्यतीति कः संशयावसरः।

इस सम्बन्ध में अधिक कहने की अपेक्षा नहीं, ऐसा करने से अपना असामर्थ्य ही प्रगट होगा। संस्कृत विद्या के अध्ययन-अध्यापन के अधिकारी होने के नाते हम जैसे लौकिक पुरुषों के सिर पर गुरुजनों का अनुग्रह भार आ पड़ा। स्वयं अपनी अनधिकारिता को जानते हुए भी "गुरुजनों की आज्ञा विना ननु-नच के पालनी चाहिए" इस नीति-वाक्य को स्मरण कर जो कुछ यहाँ हमने विखरे रूप में लिखा, उसमें जितना ग्राह्य हो, क्षमाशील विद्वान् और इस काव्य के पाठक ग्रहण करें। इस काव्य के गुणों को सम्यक्तया प्रगट करने में हमारी क्षमता नही है। अधिक विस्तार में न जा हमारा इतना ही निवेदन है कि इसे पढ़कर किसी का चित्त श्रद्धा से निर्मल वना तो हम अपने आपको कृतार्थ मानेंगे।

श्री सातकड़ि मुखोपाध्याय शर्मा
एम० ए०, पी० एच-डी
डाइरेक्टर—नव-नालन्दा महाविहार,
नालन्दा (विहार)
(भूतपूर्व अध्यक्ष—संस्कृत विभाग,
कलकत्ता विश्वविद्यालय

दिनाङ्क ३०-६-५६
कलकत्ता

आमुखम्

-नरपतिना महाराजशतानीकेन चम्पायामाक्रमणमकारि।
एकदा कौशाम्ब हनो युद्धे मृत्युमवाप। शतानीकेनादिष्टं पुर्याध्वंसाय।
चम्पाधिपतिर्दधिवा वेन नागरिकान् संत्रासयामासुः। अपजह्रुः केचिद्धनं,
सैनिका उच्छृ खलभ चिच्च वनिताजनम्। एको रथिको दधिवाहनस्य राज्ञीं
केचिदाभूषणानि. पेरीं वसुमतीञ्चापजहार। धारिणी वैशालीगणप्रमुखस्य
धारिणी. राजकुमा तो महावीरस्य मातुलपुत्री चाभूत्। तस्याः सतीत्वं
चेटकस्य पुत्री, भगधिकस्य भोगेच्छापूर्तेरवसरोऽपि न दत्तः। तस्य विकार-
सुविश्रुतम्। तया र्व निभाल्य सहसैव जिह्वामाकृष्य प्राणोत्सर्गं चकार।
पर्णामाकृति चन्दना गाम। वसुमती चापि मातुरध्वानमनुसरेत् ? इति
रथिकः स्तब्धता ज धरो मृदुस्वरमनुरुरोध—भगिनि! आश्वस्ता भव,
संशयान कम्पमाना, कौशाम्बीं गत्वा त्वां विक्रेतुमिच्छामि। नान्यास्ति
विलीना मे कामवा रथिकेन सा दासविपणौ विक्रयं नीता। ततः सा
कापि विकृतिरत्र। क्रीता। असौ वेश्याकुलस्य निन्दितं कर्म कथमपि न
कयाचिद् वेश्यया नरपि तयाऽसौ दासविपणौ विक्रीता। ततो धनावह-
स्वीचकार। तदा पु। तस्यालये दास्याःकर्म कुर्वती सा समयमतिवाहया-
नाम्ना श्रेष्ठिना क्रीत म चन्दनबालेति चक्रे। एकदा धनावहस्य पत्न्या इति
मास। तेन तस्या नतिरिमां पत्नीरूपेण स्वीकरिष्यति। धनावहः प्रयोजन-
मन्देहोऽभूत्—मम प प्रदेशे गतः। तत्पत्नी चावसरं विलोक्य चन्दन-
वशात् क्वापि वहि मकार्षीत्। करौ चरणौ च शृंखलानिगडितौ कृत्वा
बालायाः शिरोमुण्डन के स्थापयित्वा च तामन्यत्र जगाम।
एकस्मिन् विजनेऽपवर्ग वीरः कौशाम्ब्यां गृहं-गृहं पर्यटन्नपि भिक्षां नादत्ते।
इतो भगवान् म दिनोत्तरा व्यतीताः। भगवान् षड्विंशतितमे दिवसे
पञ्चमासाः पञ्चविंशति

धनावहस्य गृहे प्राविशत्। भगवान् ददर्श—अभिग्र
भगवतोऽभिग्रह आसीत् :—

"क्रीता कन्या नृपतितनया मुण्डिता ।
पार्श्वेबद्धा करचरणयोश्चाहितश्रुङ्खला
संभिन्दाना व्यथितहृदया देहलीं नाम
मध्याह्नोर्ध्वं प्रतनु रुदती सूर्पकोणः
दद्याद् भोक्ष्ये ध्रुवमितरथा नाहरिष्यामि
षण्मासान्तं सुविहिततया नैव पारयामि
श्रुत्वाप्येतत् सतनुमनसो वेपनं तद्व
चन्दना-रेखा भवति खचिता नैकरूपा ज

सद्य समागतेन धनावहेन द्वारमुद्घाट्य त्रिदिनतो
बालायाः पुरतः सूर्पकोणे मापान् संस्थाप्य लोहकारम
भगवतः समागमनमजनि। चन्दनबाला भगवन्तं दृष्ट्
अभिग्रहस्य पूर्तेः सर्वे प्रकारास्तत्रोपलब्धा अन्यत्राश्रु
अश्रुधारा प्रस्फुटिता। भगवान् पुनरायातो भिक्षा
चन्दनबाला अभूद् भगवतः साध्वीसंघस्य अधिनेत्री
साध्वीनां प्रमुखा।

अस्य काव्यस्य हिन्दीभाषायामनुवादमकार्षीत् मु
अनुवादस्य कार्यं कयाचिद् दृष्ट्या मूलरचनातोऽपि भवि
त्वेऽपि सफलत्वमत्र लब्धमिति प्रतीयते।

ज्येष्ठ शुक्ला ११, सं० २०१६

भाभवनम्, कलिकाता।

आमुख

एक बार कौशाम्बी के राजा शतानीक ने चम्पा पर आक्रमण किया। चम्पा के राजा दधिवाहन की युद्ध में मृत्यु हुई। शतानीक ने सैनिकों को नगर लूटने का आदेश दिया। सैनिकों ने जनता को लूटना आरम्भ किया। कुछेक ने धन लूटा, कुछेक ने जेवर लूटे और कुछेक ने स्त्रियों को हस्तगत किया। एक रथिक ने दधिवाहन की रानी धारिणी और राजकुमारी वसुमती का अपहरण किया। धारिणी वैशाली गणराज्य के प्रमुख चेटक की पुत्री और भगवान् महावीर के मामा की बेटी बहन थी। उसका सतीत्व विश्रुत था। रथिक उससे अपनी भोग लालसा की पूर्ति करना चाहता था, किन्तु उसने उसको ऐसा अवसर नहीं दिया। उसने रथिक की विकारपूर्ण आकृति और चेष्टाएं देखकर सहसा अपने हाथ से अपनी जीभ खींच ली और प्राणों का बलिदान कर दिया। इस घटना से रथिक स्तब्ध रह गया। वह डरा कि कहीं वसुमती भी अपनी माता के मार्ग का अनुसरण न करले। उसके होठ काँपने लगे। उसने वसुमती को कोमल स्वर से आश्वासन दिया—बहन! डर मत, अब मेरी काम-वासना शान्त हो गई है। मैं तुझे कौशाम्बी जाकर बेचना चाहता हूँ। मेरे हृदय में कोई विकृति नहीं है। रथिक ने उसे बाजार में बेचा। एक वेश्या ने उसे खरीदा। वसुमती ने किसी भी तरह वेश्या का निन्दनीय कृत्य स्वीकार नहीं किया। वेश्या ने फिर उसे बाजार में बेचा। धनावह नामक सेठ ने उसे खरीद लिया। वह उसके घर में दासी का काम कर समय-यापन करने लगी। सेठ ने उसका नाम चन्दना रखा। एक बार धनावह की पत्नी को सन्देह हुआ कि मेरा पति कहीं इसे अपनी पत्नी न बना ले। किसी काम के लिए सेठ दूसरे गांव गया। सेठानी ने अवसर देखकर [illegible] मुण्डन किया [illegible] डाली और उसे कोठे में

[illegible] आक्रमण किया। [illegible] के [illegible]

[illegible] किया। कुबेर ने धन लूटा, [illegible] किया। एक रथिक ने [illegible] का अपहरण किया। धारिणी [illegible] की पुत्री और भगवान् महावीर के मामा की बेटी [illegible] रथिक उससे पत्नी और [illegible] की पूर्ति करना चाहता था, किन्तु उसने उसको ऐसा अवसर नहीं दिया। उसने रथिक की [illegible] देखकर सहसा अपने हाथ से अपनी जीभ खींच ली और प्राणों का बलिदान कर दिया। इस घटना से रथिक स्तब्ध रह गया। वह डरा कि कहीं [illegible] भी अपनी माता के मार्ग का अनुसरण न करले। उसके होठ कांपने लगे। उसने वसुमती को कोमल स्वर से आश्वासन दिया—बहन! डर मत, अब मेरी काम-वासना शान्त हो गई है। मैं तुझे कौशाम्बी जाकर बेचना चाहता हूँ। मेरे हृदय में कोई विकृति नहीं है। रथिक ने उसे बाजार में बेचा। एक वेश्या ने उसे खरीदा। वसुमती ने किसी भी तरह वेश्या का निन्दनीय कृत्य स्वीकार नहीं किया। वेश्या ने फिर उसे बाजार में बेचा। धनावह नामक सेठ ने उसे खरीद लिया। वह उसके घर में दासी का काम कर समय यापन करने लगी। सेठ ने उसका नाम चन्दना रखा। एक बार धनावह की पत्नी को सन्देह हुआ कि मेरा पति कहीं इसे अपनी पत्नी न बना ले। किसी काम के लिए सेठ दूसरे गांव गया। सेठानी ने अवसर [illegible] मुण्डन किया। उसके हाथ पैर में जंजीर डाली और उसे कोठे में [illegible]

धनावहस्य गृहे प्राविशत्। भगवान् ददर्श—अभिग्रहस्य पूर्तिरत्र भविष्यति भगवतोऽभिग्रह आसीत् :—

"क्रीता कन्या नृपतितनया मुण्डिता चिह्निताऽपि,
पाशैर्बद्धा करचरणयोस्त्र्याहिकक्षुत्क्लमा च।
संभिन्दाना व्यथितहृदया देहली नाम पद्भ्या-
मध्यास्तोर्ध्वं प्रतनु रुदती सूर्पकोणस्थमाषान्॥
दद्याद् भोक्ष्ये ध्रुवमितरथा नाहरिष्यामि किञ्चित्,
षण्मासान्तं सुविहिततया नैव पारयामि नीरम्।
श्रुत्वाप्येतत् मतनुमनसो वेपनं तद्व्रतं य—
स्तद्वा-देवा भवति रचिता नैरन्त्या जनानाम्॥"

मद्य समागतेन धनावहेन द्वारमुद्घाट्य त्रिदिनतो बुभुक्षिताया: चन्दन-बालाया: पुरत: सूर्पकोणे माषान् संस्थाप्य लोहकारमानेतुं बहिर्गतम्। इतो भगवत: समागमनमजनि। चन्दनबाला भगवन्तं दृष्ट्वा हर्षान्विता बभूव। अभिग्रहस्य पूर्तेः सर्वं प्रकारान्तरोपलब्धा अन्यत्राभूत्वः। भगवान् वलते। अश्रुधारा प्रस्फुटिता। भगवान् पुनरागत्य भिक्षां जग्राह। इयमेव चन्दनबाला अभूद् भगवतः साध्वीसंघस्य अधिनेत्री, षट्त्रिंशत् सहस्र-साध्वीनां प्रमुखा।

अत्र कथाया: [illegible] हिन्दीभाषायामनुवादककार्येण मुनि श्रीमित्रसेन: [illegible]। अनुवादस्य कार्यं कदाचिद् दृष्ट्वा सुकरमाभातोऽपि भवति दुष्करम्। दुष्कर-मेऽपि [illegible] सम्पन्नमिति प्रतीयते।

[illegible] ११. [illegible] — मुनि नगराज :

[illegible], कलकत्ता।

आमुख

एक बार कोशाम्बी के राजा शतानीक ने चम्पा पर आक्रमण किया। चम्पा के राजा दधिवाहन की युद्ध में मृत्यु हुई। शतानीक ने सैनिकों को नगर लूटने का आदेश दिया। सैनिकों ने जनता को लूटना आरम्भ किया। कुछेक ने धन लूटा, कुछेक ने जेवर लूटे और कुछेक ने स्त्रियों को हस्तगत किया। एक रथिक ने दधिवाहन की रानी धारिणी और राजकुमारी वसुमती का अपहरण किया। धारिणी वैशाली गणराज्य के प्रमुख चेटक की पुत्री और भगवान् महावीर के मामा की बेटी बहन थी। उसका सतीत्व विश्रुत था। रथिक उससे अपनी भोग लालसा की पूर्ति करना चाहता था, किन्तु उसने उसको ऐसा अवसर नहीं दिया। उसने रथिक की विकारपूर्ण आकृति और चेष्टाएं देखकर सहसा अपने हाथ से अपनी जीभ खींच ली और प्राणों का बलिदान कर दिया। इस घटना से रथिक स्तब्ध रह गया। वह डरा कि कहीं वसुमती भी अपनी माता के मार्ग का अनुसरण न करले। उसके होठ काँपने लगे। उसने वसुमती को कोमल स्वर से आश्वासन दिया—बहन ! डर मत, अब मेरी काम-वासना शान्त हो गई है। मैं तुझे कोशाम्बी जाकर बेचना चाहता हूँ। मेरे हृदय में कोई विकृति नहीं है। रथिक ने उसे बाजार में बेचा। एक वेश्या ने उसे खरीदा। वसुमती ने किसी भी तरह वेश्या का निन्दनीय कृत्य स्वीकार नहीं किया। वेश्या ने फिर उसे बाजार में बेचा। धनावह नामक सेठ ने उसे खरीद लिया। वह उसके घर में दासी का काम कर समय-यापन करने लगी। सेठ ने उसका नाम चन्दना रखा। एक बार धनावह की पत्नी को सन्देह हुआ कि मेरा पति कहीं इसे अपनी पत्नी न बना ले। किसी काम के लिए सेठ दूसरे गाँव गया। सेठानी ने अवसर देखकर ... मुण्डन किया। उसके हाथ-पैर में जंजीर डाली और उसे कोठे में

उधर भगवान् महावीर कौशाम्बी के घर घर में जाकर भी भिक्षा नहीं ले रहे थे। पाँच महीने और पच्चीस दिन बीते। छब्बीसवें दिन भगवान् ने धनावह के घर में प्रवेश किया। भगवान् ने देखा—यहाँ मेरा अभिग्रह पूर्ण होगा। भगवान् का अभिग्रह था :—

"मैं भिक्षा तभी लूँगा यदि दान देनेवाली १—राजा की पुत्री, २—अविवाहित और ३—बाजार मे खरीदी हुई हो, ४—जिसका शिर मुण्डित हो और ५—उसमें दाग लगे हों, ६—७—जिसके हाथ-पैर जंजीरों से जकड़े हों, ८—जो तीन दिन से भूखी हो, ९—जिसका एक पाँव घर की देहली के अन्दर हो और दूसरा बाहर, १०—तीसरे प्रहर का समय हो, ११—आँखों में आँसुओं की धार बहती हो, १२—छाज के कोने में, १३—उबले हुए उड़द हों। अन्यथा छह महीनों तक मैं तपस्या करता रहूँगा, न भोजन करूँगा और न पानी ही पीऊँगा। यह वह घोर व्रत था, जिसे सुनकर साधारण व्यक्तियों का मन और शरीर कांपने लगता है। क्योंकि लोगों में श्रद्धा एक जैसी नहीं होती, विविध प्रकार की होती है।"

सेठ उसी दिन बाहर से आया था। उसने द्वार खोलकर चन्दनबाला को देखा। वह तीन दिन से भूखी थी। सेठ ने उसके खाने के लिए उबले उड़द छाज के कोने में डाल उसके सामने रख दिए और स्वयं जंजीर तुड़वाने के लिए लुहार को बुलाने गया। इधर भगवान् उसके घर आये। भगवान् को देखकर चन्दनबाला हर्ष-विभोर हो उठी। अभिग्रह-पूर्ति की सारी बातें मिल गईं। किन्तु आंसू नहीं थे। भगवान् मुड़े। चन्दनबाला के आंखों में आंसू छलक पड़े। भगवान् वापस आये और भिक्षा ग्रहण की। यही चन्दनबाला भगवान् महावीर के साध्वी-संघ की अधिनेत्री और छत्तीस हजार साध्वियों में प्रमुखा बनी।

मुनि श्री मिठालालजी ने इस काव्य का हिन्दी भाषा में अनुवाद किया है। किसी दृष्टि से अनुवाद का कार्य मूल-रचना से भी कठिन होता है। कठिन होने पर भी उन्हें इसमें सफलता मिली है—ऐसा लगता है।

ज्येष्ठ शुक्ला ११, सं० २०१६ —मुनि नथमल

महासभा-भवन, कलकत्ता।

प्रतिपत्तये....

जैन आगम ज्ञान-विज्ञान के अक्षय भण्डार हैं। उनसे संबल पा मनीषी अनेक प्रकार की दार्शनिक एवं साहित्यिक कृतियाँ युगों से प्रस्तुत करते आ रहे हैं, जिनका अपना बहुत बड़ा महत्व है, जो मानव को 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की ओर बढ़ाये ले चलने का अप्रतिम साधन है।

'अश्रुवीणा' जैन आगमों में वर्णित भगवान् महावीर के तपस्वी जीवन से सम्बन्धित एक अति विश्रुत घटना से जुड़ा संस्कृत खण्ड-काव्य है। भगवान् महावीर के एतद्युगीन प्रतिनिधि महामहिम आचार्य श्री तुलसी के अन्तेवासी मुनि श्री नथमलजी की यह पावन कृति है। मुनिश्री ने अपनी उर्वर मेधा व प्रतिभा द्वारा इस काव्य में उदात्त और स्फूर्त्त भावनाओं की जो अभिनव अवतारणा की है, निःसन्देह संस्कृत के आधुनिक साहित्य-जगत् में वह एक चमत्कृति है। परम पुनीता चन्दनबाला के नेत्रों से निकलती आँसुओं की लडी किस प्रकार श्रद्धा और भक्ति से गुनगुनाते भाव-वीणा के तरल तन्तुओं में बदल जाती है, कवि ने अति कोमल-कान्त पदावली द्वारा इसे बड़े स्पृहणीय रूप में प्रस्तुत किया है।

आदर्श साहित्य संघ, जो जीवन को आदर्शोन्मुख बनाने वाले सत्साहित्य के प्रकाशन एवं प्रचार-प्रसार का ध्येय लिये चला आरहा है, की ओर से तेरापन्थ द्विशताब्दी समारोह के अभिनन्दन में कलेवर में लघु पर अत्यन्त प्रभावकारी इस खण्ड-काव्य का प्रकाशन करते हम अत्यन्त हर्ष अनुभव करते हैं।

मुनिश्री मिट्ठालालजी द्वारा किये गये मूलस्पर्शी, सरल एवं सुन्दर अनुवाद ने काव्य की उपयोगिता और बढ़ा दी है।

आशा है, पाठक इस द्वारा जीवन में 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की साक्षात् अनुभूति लेने का पथ पायेंगे।

जयचन्दलाल दफ्तरी
व्यवस्थापक
आदर्श साहित्य संघ

सरदारशहर (राजस्थान)
आषाढ़ कृष्णा १३, २०१७.
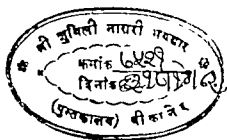
अश्रु-वीणा

[खण्ड काव्यम्]

(१)

श्रद्धे ! मुग्धान् प्रणयसि शिशून् दुग्ध-दिग्धास्यदन्तान्,
भद्रानज्ञान् वचसि निरतांस्तर्कयाणैरदिग्धान् ।
विज्ञांश्चापि व्यथितमनसस्तर्कलब्धावसादा-
त्तर्कोणाऽमा न खलु विदितस्तेऽनवस्थानहेतुः ॥

(२)

संयोगात्तेऽनुभवति नरः पामरश्चामरेन्द्रं,
व्याघातात्ते प्रवर-चतुरश्चाप्यनादेयवाक्यम् ।
पूज्याऽपूज्यान् गुरुकलघुकान् सज्जनाऽसज्जनांश्च,
भावाभावौ विभजति जनस्तत्र मानं तवैव ॥

(३)

तत्रानन्दः स्फुरति सुमहान् यत्र वाणीं श्रिताऽसि,
दुःखं तत्रोच्छलति विपुलं यत्र मौनावलम्बा ।
किं वाऽऽनन्दः किमसुखमिदं भाषसे सप्रयोगं,
त्वामाक्षिप्य स्वमतिजटिलास्तार्किका अत्र मूढाः ॥

(१)

श्रद्धे! तू ऐसे नन्हें-नन्हें बच्चों से प्यार करती है, जिनके मुंह और दाँतों का दूध तक न सूखा है, जो ननुनच किए बिना वचनों में विश्वास रखने वाले, मन के भोले और अज्ञ हैं। तू पढ़े-लिखे लोगों में केवल उन्हीं से प्यार करती है, जिनका मन तर्क की परिणाम-विरसता से ऊब गया हो। किन्तु हम यह नहीं जान पाये कि तर्क के साथ तेरा मेल क्यों नहीं बैठता?

(२)

श्रद्धे! तुझसे सींचा हुआ व्यक्ति पामर को भी इन्द्र मानने लगता है। पर जब तू चली जाती है, कुशल से कुशल व्यक्ति की बात मानने में भी संकोच होता है। मनुष्य जहाँ पूज्य और अपूज्य में, छोटे और बड़े में, भले और बुरे में भेद-रेखा खींचता है, वहाँ तेरा होना या न होना ही मानदण्ड बनता है।

(३)

श्रद्धे! तू जहाँ मुखर हो उठती है, सचमुच वहाँ आनन्द बह निकलता है। किन्तु जहाँ तू रूठी रहती है, वहाँ दुख बाँसों ऊँचा उछलता है। सुख और दुख की जैसी प्रयोगात्मक परिभाषाएं तू बता सकती है, वैसी तेरा विरोध करने वाले नीरस तार्किक नहीं बता सकते। क्योंकि वे अपने तर्कोन्माद में उलझे रहते हैं।

सरसम्पर्का दधति न पदं कर्कशा यत्र तर्काः,
सर्वं द्वैधं व्रजति विलयं नाम विश्वासभूमौ।
सर्वे स्वादाः प्रकृतिसुलभा दुर्लभाश्चानुभूताः,
श्रद्धा-स्वादो न खलु रसितो हारितं तेन जन्म ॥

(५)

चित्रं चित्रं तव सुमृदवः प्राणकोशास्तथापि,
कष्टोन्मेषे दृढतममतो मानवे चानुरागः।
श्रद्धाभाजो जगति गणिताः सन्दिहाना असंख्याः,
श्रद्धा-पात्रं भवति विरलस्तेन कश्चित्तपस्वी ॥

(६)

श्रद्धावृत्तं लिखितमधुनाप्यस्ति वाष्पाम्बुमध्या,
भक्त्युद्रेकाद् द्रवति हृदयं द्रावयेत्तन्न कं कम्।
श्रद्धापूता समजनि सती चन्दना वन्दनीया,
भक्तिस्नातोऽप्यजनि भगवान् भावनापूत्येवन्ध्यः ॥

(७)

निर्ग्रन्थानामधिपतिरसौ पश्चिमस्तीर्थनाथो—
देह-स्नेहं सहजसुलभं बन्धहेतुं व्युदास्य।
दीर्घं कालं विविधविधिभिर्घोररूपं तपस्य-
न्नेकं कश्चित् कुलिशकठिनोऽभिग्रहं चारु चक्रे ॥

(४)

जहाँ तर्कों की कर्कशता होती है, वहाँ स्पन्दन सरस हो नहीं पाते। एकात्मकता का उदय विश्वास की भूमिका में ही होता है और वहाँ सारा द्वेष विलीन हो जाता है। सरलता से या कठिनाई से मिलने वाले सब स्वादों का अनुभव करने पर भी जिसने श्रद्धा का स्वाद नहीं चखा, उसका जन्म वृथा है।

(५)

श्रद्धे ! कितना आश्चर्य है ! तेरे प्राणकोश अत्यन्त सुकुमार हैं फिर भी तू उन व्यक्तियों से अनुराग करती है, जो भयंकर कष्टों के वातूल में भी अडोल रहते हैं। संसार में श्रद्धालु उंगलियों पर गिनने जैसे हैं और सन्देहशील असंख्य। श्रद्धा का उपयुक्त पात्र कोई विरला साधक ही होता है।

(६)

श्रद्धा का इतिहास आंसुओं की स्याही से लिखा गया है। जहाँ भक्त का हृदय भक्ति के उद्रेक से पिघल जाता है, वहाँ वह औरों (भगवान्) को भी पिघला देता है। सती चन्दनबाला श्रद्धा की गंगा में नहाकर पवित्र बन गई। उसकी भक्ति से नहाए हुए भगवान् भी उसकी भावना को असफल नहीं कर सके।

(७)

साधु-संघ के अधिपति, अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर सहज-सुलभ देहासक्ति को बन्धन-कारक मान उससे परे रहते थे। उन्होंने दीर्घकाल तक विविध प्रकार से घोर तपस्या करते हुए एक विचित्र अभिग्रह किया—व्रत लिया। कष्टों को सहने में वे वज्र से भी कठोर थे।

१ २ ३ ४ ५
क्रीता कन्या नृपतितनया मुण्डिता निहितापि,
६ ७ ८
पार्श्वेद्धा करचरणयोस्त्र्याहिकक्षुत्क्षमा च।
९
संभिन्दाना व्यथितहृदया देहलीं नाम पद्भ्यां,
१० ११ १२ १३
मध्याह्नोर्ध्वं प्रतनु रुदती शूर्पकोणस्थमापान् ॥

(९)

दद्याद् भोक्ष्ये ध्रुवमितरथा नाहरिष्यामि किञ्चित्,
षण्मासान्तं सुविहितनया नैव पास्यामि नीरम्।
श्रुत्वाऽप्येतत् सतनुमनसो वेपनं तद्व्रतं य-
च्छ्रद्धा-रेखा भवति खचिता नैकरूपा जनानाम् ॥ (युग्मम्)

(१०)

खेदं स्वेदो बहिरपनयञ्जात आकस्मिकेन,
प्रोल्लासेनाऽभ्युदयमयता दर्शनाद् विश्वभर्तुः
कामं श्रान्तां किमपि किमपि प्रस्मरन्तीं स्मरन्तीं,
स्वस्थां चक्रे पुलकिततनुं चन्दनां स्मेरनेत्राम् ॥

(८-९)

(वह अभिग्रह इस प्रकार था) मैं भिक्षा तभी लूँगा, यदि दान देने वाली— (१) राजा की पुत्री हो (२) अविवाहित हो (३) बाजार से खरीदी हुई हो (४) जिसका सिर मुंडित हो (५) उसमें दाग लगे हों (६-७) जिसके हाथ, पैर जोरों से जकड़े हों (८) जो तीन दिन से भूखी हो (९) जिसका एक पांव घर की देहली के अन्दर हो और दूसरा बाहर (१०) तीसरे प्रहर का समय हो (११) आंखों में आसुओं की धार वहती हो (१२) छाज के कोने में (१३) उबले हुए उड़द हों। अन्यथा छह महीनों तक मैं तपस्या करता रहूँगा, न भोजन करूँगा और न पानी ही पीऊँगा। यह वह घोर व्रत था, जिसे सुनकर साधारण व्यक्तियों का मन और शरीर कांपने लगता है। क्योंकि लोगों में श्रद्धा एक जैसी नहीं होती, विविध प्रकार की होती है।

(१०)

विश्व-भर्ता भगवान् महावीर के दर्शन से चन्दनबाला को अकस्मात् जो अपार हर्ष का अनुभव हुआ, उससे उसके शरीर से स्वेद टपकने लगा। उस समय ऐसा लगता था, मानो वह स्वेद चन्दनबाला के अन्तर्वर्ती संताप को बाहर खींच लाया है। जो कुछ क्षण पहले दिङ्मूढ़ सी बनी हुई अर्ध-विस्मृति की स्थिति में डुबकियाँ लगा रही थी, अब वह स्वस्थ हो गई। उसका शरीर पुलकित हो उठा और आंखें विकसित हो गईं।

(११)

धन्यं धन्यं शुभदिनमिदं विधुता शोनिताशः,
सिञ्चन्नुर्वीं नवजलधरः कर्षकेणाद्य दृष्टः।
तापः पापोऽगणितदिवसैरन्तरङ्ग्यां प्रविष्टः,
श्वासानन्त्यान् गणयतितमां निःश्वसन्नुष्णमुच्चैः॥

(१२)

कार्यं चिन्वंल्लगति विशदं कल्पनानां निकायो,
राज्यभ्रंशे नियतिनिरतः पेलवो योऽजनिष्ट।
भाग्येनैषा कुटिलमतिना सर्वथोपेक्षिताऽपि,
सानायासं समरसजुषाऽहं सनाथीकृताऽस्मि॥

(१३)

सर्वा सम्पद् विपदि विलयं निर्विरोधं जगाम,
व्यूढश्रद्धा महति सुकृतेऽद्यापि नूनं परीक्ष्या।
भक्त्यादेशा प्रकृतिकृपणाऽकिञ्चनैर्निर्विशेषा,
स्वामिन्नेषा विनयविनताऽस्मि प्रणामावशेषा॥

(१४)

आशास्थानं त्वमसि भगवन्! स्त्रीजनानामपूर्वं,
त्वत्तो बुद्ध्वा स्वपदमुचितं स्त्रीजगद् भावि धन्यम्।
जिह्वां कृष्ट्वाऽसहनरथिकः काममत्तोऽम्बया मे,
दृष्टिं नीतोऽस्तमितनयनस्तत्र दीपस्त्वमेव॥

आज का शुभ दिन कितना धन्य है। कृपाकार ने मेघ-मेघ को देखा कि वह विद्युत्-प्रकाश से समस्त दिशाओं को आलोकित करता हुआ, अपनी धाराओं से भूमि को सींच रहा है। बहुत दिनों से जो दुष्ट ताप भूमि में छिपा हुआ था, आज वह जोर से गरम आहें छोड़ता हुआ अपनी अन्तिम सांसें गिन रहा हो—ऐसा प्रतीत होता है।

(१२)

राज्य-भ्रंश होने पर मेरी समस्त कल्पनाएँ नियतिवश दुर्बल हो चली थीं, आज वे मानो विशद शरीर का निर्माण कर रही हैं। जिस कुटिल-भाग्य ने मुझे (चन्दनबाला को) उपेक्षित कर रखा था, वह मैं समरसलीन भगवान् द्वारा आज अनायास ही सनाथ कर दी गई हूँ।

(१३)

जिसकी समस्त सम्पत्ति ने विपत्ति में अपना निर्विरोध विलय कर दिया, उस दृढ श्रद्धालु की परीक्षा क्या आज की इस पुण्योदय की वेला में भी अवशिष्ट है? भगवन्! आज यह चन्दनबाला प्रकृति कृपण अकिंचन व्यक्ति जैसी स्थिति में है। उससे भक्ति की ही अपेक्षा की जा सकती है। प्रणाम करने के अतिरिक्त उस विनीत (चन्दनबाला) के पास है भी क्या?

(१४)

भगवन्! महिला-जगत् की आशाओं के आप एक अपूर्व केन्द्र-स्थान हैं। महिलाएँ आपसे अपनी शक्ति का सही भान पा जीवन में सफल होंगी। शत्रु (शतानीक) के कामोन्मत्त रथिक ने मेरी माता के साथ बलात्कार करना चाहा, तब उसने (माता ने) अपनी जीभ खींच कर अपने प्राणों की आहुति दे दी और साथ ही उस रथिक की अन्तर की आंखें खोल दीं--उसे सत्पथ पर ले आई। उस समय मेरी माता के लिए आप ही प्रकाश-स्तम्भ बने थे[१]।

[१]—चन्दनबाला के पिता, चम्पा नगरी के राजा दधिवाहन के साथ कौशाम्बी के राजा शतानीक ने जब लड़ाई छेड़ी, तब राजा दधिवाहन युद्ध-स्थल को छोड़कर वन की ओर भाग निकला। पीछे से शतानीक के सैनिक नगर को लूटने के लिए अन्दर गए। एक रथिक राजभवन से चन्दनबाला और उसकी माता धारिणी को रथ में बिठाकर वन की ओर चल पड़ा। मार्ग में उसके बलात्कार से अपने शील की रक्षा के लिए धारिणी ने अपनी जीभ खींचकर प्राणान्त कर दिया।

चण्डश्चण्डं गलमुपनतस्त्वां दशन् कौशिकोऽपि,
कोपाटोपं विपुलमुपयन् मिश्रितं विस्मयेन।
संज्ञां लेभे प्रशमफलितां यन् महान् सेव्यमानः,
प्रत्यासत्त्या भवति निखिलाऽभीष्टसिद्धेर्निमित्तम्॥

(१६)

अत्राणानां त्वमसि शरणं त्राहि मां त्राहि तायिन्,
गृह्णीस्वैतान् सकरुणदृशा नीरसान् सर्वमाषान्।
अन्तःसाराः सहजसरसा यच्च पश्यन्ति गूढा—
नन्तर्भावान् सरसमरसं जातु नो वस्तुजातम्॥

(१७)

इष्टे शश्वन् निवसति जने मन्दतामेति हर्ष—
स्तस्यानिष्टेऽप्यनुभवलवो नैव सञ्चेतितः स्यात्।
इष्टेऽनिष्टाद् व्रजति सहसा जायते तत्प्रकर्षो,
लब्ध्वाऽर्हन्तं प्रतिनिधिरिवाद्याऽऽबभौ सम्मदानाम्॥

(१८)

भिक्षां लब्धुं प्रसृतकरयोः सम्प्रतीक्षापटुभ्यां,
तच्चक्षुर्भ्यां हसितमियताऽपूर्वहर्षोदयेन।
येनाऽश्रूणामवलिरभवत् केवलं नैव सृष्टा,
तेषां किन्तु प्रसरनिपुणा चाप्युपादानलेखा॥

भगवन्! चण्डकौशिक साँप (दृष्टि-विष सर्प—जिसकी आंखों में भयंकर जहर था) बड़ा उग्र था। वह आपके गले में फन फैलाकर डसने लगा। उसे आश्चर्य हो रहा था कि अनेकों बार डसने पर भी भगवान् अडोल कैसे खड़े हैं? क्रोध से वह आगबबूला हुआ। अन्त में उसे ऐसी चेतना प्राप्त हुई, जिसका परिणाम था—प्रशम-मानस-समाधि। निकट में की गई महापुरुषों की उपासना इष्ट-सिद्धि का निमित्त बनती है, भले वह कैसे ही की जाए।

(१६)

त्रिभुवन-रक्षक! आप अत्राणों के त्राण हैं। मैं आपकी शरण में हूँ। मेरी रक्षा कीजिए। मेरे ऊपर कृपा कर छाज में रखे उबले हुए उड़द आप स्वीकार करें। क्योंकि जो व्यक्ति स्वभाव से सरस और आत्मा में ही सारभूत तत्त्वों का अनुभव करने वाले हैं, वे दूसरों के गूढ़ अन्तर्भावों को ही महत्त्व देते हैं, सरस-नीरस बाह्य पदार्थों का उनकी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं होता।

(१७)

जो व्यक्ति निरन्तर अभीष्ट वातावरण में रहता है, वहाँ अतिपरिचय के कारण उसका हर्ष फीका सा पड़ जाता है और अनिष्ट वातावरण में हर्ष की अनुभूति पनप सके—यह प्रश्न ही नहीं उठता। किन्तु व्यक्ति जब अनिष्ट वातावरण से सहसा इष्ट वातावरण में आता है, उस समय उसे अपूर्व हर्ष का अनुभव होता है। भगवान् महावीर को सम्मुख पाकर चन्दनबाला की भी यही स्थिति थी। मानों वह आनन्द की प्रतिनिधि बन गई हो।

(१८)

भगवन् भिक्षा लेने को प्रस्तुत थे। चन्दनबाला की आँखें उनकी प्रतीक्षा में अधीर हो रही थीं। उस समय वे (आँखें) अपूर्व आनन्द से ऐसी खिल उठीं कि केवल उनसे अजस्र बहने वाले आँसू ही नहीं दीखे गए बल्कि उनकी (आँसुओं की) चन्दन रेखाएँ भी मोती का पुंज।

(१९)

श्रद्धाभाजां भवति मसृणं मानसं यावदेव,
श्रद्धापात्रैः प्रचरति समं रूक्षभावोऽपि तावान् ।
अम्भोवाहो घनरसनतः स्नेहपूर्णेक्षणानि,
ग्रीष्मार्तानामचिरमकृपं लङ्घते साशयानि ॥

(२०)

किञ्चिन्नोक्तं न खलु मृदुलाऽपैक्षि तद्भावनाऽपि,
श्रद्धाविष्टं नयनमनसोश्चापलं नाप्यलोकि ।
भिक्षादानोच्चलितकरयोर्नानुकम्पाऽप्यकारि,
देवार्येण प्रतिगतमिति द्वारदेशोपकण्ठम् ॥

(२१)

वाणी वक्त्रान्न च बहिरगाद् योजितौ नापि पाणी,
पाञ्चालीवाऽनुभवविकला न क्रियां काञ्चिदार्हत् ।
सर्वैरङ्गैः सपदि युगपन्नीरवं स्तब्धताऽऽप्ता,
वाहोऽश्रूणामविरलमभूत् केवलं जीवनाङ्कः ॥

(२२)

मूर्च्छां प्राप्य क्षणमिह पुनर्लब्धचित्तोदयेव,
दिक्षु भ्रान्ता दशसु करुणं साशयं सा निदध्यौ ।
नाश्वासाय व्यथितहृदया प्राप कञ्चिद् द्वितीयं,
सद्यः सिद्ध्यै स्फुरितजवनाऽऽमन्त्र्य वाष्पानुवाच ॥

श्रद्धालु व्यक्तियों का अन्तःकरण जितना अधिक चिकना होता है, उतना ही अधिक रूखापन श्रद्धापात्र व्यक्तियों में रहा करता है। कई बार देखते हैं, जल से भरे हुए और झुके हुए मेघ भी गर्मी से सन्तप्त लोगों की स्नेह और उज्जवल भविष्य की कल्पनाओं से भरी हुई आंखों की निर्दयता से उपेक्षा कर आगे निकल जाते हैं।

(२०)

भगवान् ने चन्दनबाला को न कुछ कहा, न उसकी कोमल भावना को आंका, न उसकी श्रद्धा से भीगी आंखों की ओर मन की अधीरता को देखा और न भिक्षा देने के लिए आगे बढ़े हुए हाथों पर ही दया की। भगवान् दान लिए बिना ही वहाँ से द्वार की ओर चल पड़े। (कारण कि चन्दनबाला की आंखों में आंसू नहीं थे)

(२१)

चन्दनबाला के मुँह से उस समय न शब्द निकल पाया और न उसके हाथ ही जुड़ पाये। पुतली की तरह वह ऐसी अनुभव-शून्य बन गई कि उसमें कुछ विचार करने की क्षमता तक न रही। उसके समस्त अंगों में एक साथ तेजी से ऐसी निस्तब्धता छा गई कि उसकी आंखों में अजस्र बहने वाले आंसू ही उसके जीवित होने के चिन्ह जान पड़ते थे।

(२२)

वह क्षण भर के लिए मूर्छित सी हो गई। पुनः चैतन्य का उन्मेष हुआ, उसने भ्रान्त व्यक्ति की तरह दसों दिशाओं में देखा। उसके देखने में करुणा और आशा व्यक्त हो रही थी। उसका दिल टूट रहा था। उसे आश्वासन देने वाला कोई दूसरा न मिला। फिर अपनी कार्य-सिद्धि के लिए उसने [illegible] और [illegible] कर बोली।

बान्धाः ! आशु व्रजत नयनैश्चणमेण प्रयाति,
साक्षात्प्राप्तः परिचितशुगः प्राप्तणीयस्तपस्वी ।
सार्थश्चैकोऽनुभवति विपद्भारमोक्षश्च युष्मां-
ल्लब्ध्वा नान्यो भवति शरणं तत्र यूयं सहायाः ॥

(२४)

चित्रा शक्तिः मकरविदिता हन्त युष्मासु भाति,
रोद्धुं यान्नाक्षमत पृतना नापि कुन्ताग्रमुग्रम् ।
खातं गर्ता गहनगह्वरं पर्वतश्चापगाऽपि,
मग्नाः सद्यो वहति विरलं तेऽपि युष्मत्प्रवाहे ॥

(२५)

दृश्यं पुण्यं चरति सततं पादचारेण सोऽयं,
तस्माद् भूमिं सरत पुरतः पादयोर्न्यस्यताऽपि ।
संश्लिष्यन्तो हृदयगहनस्पर्शिभावान् सजीवान्,
मार्गान्नातिव्रजति स यतस्तत्क्षणार्द्रान् सजीवान् ॥

(२६)

स्मर्तव्यं तद् यतिपतिरसौ पूतभावैकनिष्ठो,
नेयस्तस्माद्जुतमवथैः पावनोत्सप्रतीतिम् ।
साहाय्यार्थं हृदयमखिलं सार्थमस्तु प्रयाणे,
तस्योद्घाटः क्षणमपि चिरं कार्यपाते न चिन्त्यः ॥

(२३)

(चन्दनबाला सम्भ्रमपूर्वक आंसुओं से कह रही है—आंसुओ ! तुम अहो
[illegible]ओ और पहुँचो। देखो ! वह तपस्वी जा रहा है, जो मुझे साक्षात् मिला था।
[illegible]ह संचित सुकृत द्वारा ही मिला करता है। आंसुओं ! तुम्हें पाकर अकेला व्यक्ति
[illegible] साथ और विपत्ति के भार से मुक्ति का अनुभव करता है। जहाँ दूसरा कोई
[illegible]रण नहीं, वहाँ तुम्हीं सहायक बनते हो।

(२४)

आँसुओं ! जिन्हें सेना, भाले की पैनी नोक, खदान, गड्ढा, घोर जंगल, पहाड़,
[illegible]नदियाँ भी रोकने में असमर्थ हैं, वे तुम्हारे लघु-प्रवाह में सहसा डूब जाते हैं।
तुम्हारे में कोई अद्भुत शक्ति है, इसे सब जानते हैं।

(२५)

आसुओं ! देखना, वह पैदल चल रहा है, इसलिए तुम भी भूमि पर चले जाना
और उसके पैरों के सामने नाचने लग जाना। किन्तु अन्तर-हृदय को छूने वाले
सजीव अभिप्रायों को साथ रखना। क्योंकि वे तत्काल भीगे सजीव मार्गों को लांघ
कर नहीं जाते।

(यहाँ पर यह दिखाया गया है कि जिस प्रकार जीव-सहित मार्ग अहिंसक के
लिए अनतिक्रमणीय होते हैं, उसी प्रकार हृदय के सजीव भाव भी अनुल्लङ्घ्य हैं
अर्थात् टाले नहीं जाते। निर्जीव भावों का कुछ भी मूल्य नहीं हुआ करता)

(२६)

आसुओं ! याद रखना, ये यति-पति पवित्रता में विश्वास रखते हैं। अतः
उन्हें अत्यन्त सरलता से विश्वास दिलाना कि हमारा जन्म पवित्र स्रोत से हुआ
है। तुम्हारे इस प्रयाण में मेरा समूचा हृदय सहयोग के लिए तुम्हारे साथ है।
काम पड़ने पर उसे खोलकर रखने में भी तुम विचार या संकोच न करना।

अन्तर्वेदी प्रकरणपटुः किंस्विदत्राऽनुरोध्यो,
नैवं भाव्यं सुचिरमलसैः कल्पनागौरवेण।
कार्यारम्भे फलवति पलं न प्रमादो विधेयः,
सिद्धिर्वन्ध्या भवति नियतं यद् विधेयस्थलानाम्॥

(२८)

आलोकाग्रे वसतिममलामाश्रयध्वेऽपि यूय—
मालोकानामधिकरणभूरेष पुण्यो महर्षिः।
दृश्यं कश्चिच्चटुकृतिनटः स्यान्न वा मध्यपाती,
यद् दुर्भेद्यस्तिमिरनिचयो नास्ति तादृक् त्रिलोक्याम्॥

(२९)

अन्तस्तापो बत भगवते सम्यगावेदनीयो,
युष्मद्योगः सुकृतसुलभः संशये किन्तु किञ्चित्।
नित्यप्रौढाः प्रकृतितरला मुक्तवाते चरन्तः,
शीतीभूता अपि च पटवः किं क्षमाभाविनोऽत्र॥

(३०)

पूर्वं देहस्तदनुवसनं मृद्-मरुच्चातपोऽपि,
युष्मत्स्नेह-प्रवहणमिदं संविरोत्स्यन्त एव।
तस्माद् भूयाद् विजयजवि तत् संहतश्चानुवंशं,
त्राणं यस्माद् भवति न च भूःक्षीणमूलान्वयानाम्॥

विशेषार्थ—निर्झर के रूप में जब तुम बह कर जाओगे, उस समय पहले ये अंसों के गट्टे तुम्हारा विरोध करेंगे अर्थात् सुखाने का प्रयत्न करेंगे और उसके बाद कपड़े, मिट्टी, हवा और धूप—ये सब तो विरोध करेंगे ही। इसलिए तुम्हारा यह संगठित और सतत (आनुवंशिक) प्रवाही निर्झर विजय पाने में अर्थात् अपना काम करने में तत्पर बने। क्योंकि यह पृथ्वी भी उन व्यक्तियों को कोई त्राण नहीं देती, जिनकी वंश-परम्परा विच्छिन्न हो चुकी है अर्थात् उन व्यक्तियों का नाम संसार के मानचित्र से मिट जाता है।

धैर्यं सम्यक् क्वचिदपि न वा न्यून-सज्जा भवेत,
अन्यथापाः पुष्टौ अङ्गुलतुमुलास्ते पुरश्चारिणः स्युः।
आकर्णयुगमन-नियतं ये प्रभोर्ध्यानमत्र,
यन् मूकानां न खलु भुवने क्वापि लभ्या प्रतिष्ठा ॥

(३२)

निश्छिद्रेऽस्मिन् भगवति पुनश्छिद्रमन्वेषयेयुः
संपत्स्यन्ते सफल विषयस्ते कदाचिन्न तत्र
कर्णश्छिद्रं सदपि सगुणं बाधते तं न किं
तद् यातोच्चैर्जिनमुपगताः प्राणवत्तां पटिष्ठ

(३३)

स्फूर्त्यात्मानः प्रसरणसहा भेदसंघ
संकेतैर्वा सहजशकनैर्वेदयन्ते
शब्दा यूयं प्रकृतिपटवोऽनक्षराः
नाश्वस्तां मां किमपि शृणुयादित्यमुं

(१८)

आँसुओ ! भगवान् निर्लिप्त (वीतराग) हैं। जो इनमें छिद्र ढूंढेंगे, वे कभी भी उनके मार्ग में स्थान नहीं होंगे। यद्यपि इनके कानों में छिद्र हैं और वे शीघ्र उनसे शब्द (प्रवाद) को ग्रहण करते हैं। किन्तु वे इनके ध्यान में कुछ भी बाधा नहीं पहुंचाते। अतः इन्हें अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए विशिष्ट शक्तिशाली बन कर जाना चाहिए।

(१९)

(चन्दनबाला के रुदन के साथ सिसकियों के रूप में शब्द भी हो रहा था) — वह शब्दों को सम्बोधित कर कह रही है शब्दो ! तुम प्रसरणशील हो, ध्वनित होना तुम्हारी आत्मा है। पुद्गल-स्कन्धों (समुदित परमाणुओं) के भेद (एक स्कन्ध का अनेक स्कन्धों में विभक्त होना) से तुम पैदा हुए हो। अपनी सहज शक्ति और संकेतों के द्वारा तुम वस्तु का बोध कराते हो। अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक—ये तुम्हारे दो रूप हैं। तुम स्वभाव से बड़े पटु हो। अतः भगवान् को इतनी सी प्रेरणा दे दो कि वे मुझ दुखियारी की कुछ बात सुन लें।

जीर्णाजीर्णैरपि तदुभयैर्युग्मयुग्मन्नयमाना,
अग्रे मूर्ति जनयथ निजां निम्नरेखासु भूमौ ।
चित्रं युष्मान् श्रवणविषयान् मन्वतेऽद्यापि लोकाः,
सूक्ष्मैर्भाव्यं न खलु विदुरः स्थूलदृष्टि गतेषु ॥

(३५)

सद्यो वल्लावरणमखिलं क्षोभयन्त्यो लहर्यो,
युष्माकं तं निरुपममहो ध्यानलीनं समेत्य ।
क्षोभात्मानं निजकमुचितं विस्मरेयुर्न भावं,
कश्चिच्चित्रो भवति भुवने यन्महात्म-प्रभावः ॥

(३६)

भेदो भावी प्रथमसमये तत्र चिन्ता न कार्या,
स्कन्धानन्यान् वियति विततान् प्राप्य यातव्यमग्रे ।
बाध-व्यूहो ध्रुवमुपनतः स्यात् प्रगत्याः प्रयाणे,
सोत्साहास्तं परमपरतो योगमाप्त्वा तरन्ति ॥

शब्दों। तुम जीवों से, अजीवों से और उनके मिश्र[1] (जीवाजीव) से पैदा होकर आकाश में अपनी आकृतियाँ और भूमि में विविध प्रकार की रेखाएं बनाते हो। बड़ा अचरज है कि फिर भी आज तक लोग तुम्हें कानों का ही विषय मानते रहे हैं। स्थूल-दृष्टि वाले लोगों के बीच विद्वान् को ज्यादा सूक्ष्म बनना उचित नहीं है।

(भाव यह है कि शब्द दृश्य भी हैं, फिर भी लोग उन्हें सिर्फ श्रव्य ही मानते हैं। क्योंकि साधारणतः कानों के द्वारा ही शब्द सुने जाते हैं, आंखों से देखे नहीं जाते। इसलिए स्थूल दृष्टि वाले व्यक्ति इस सूक्ष्मता की तह तक पहुंच नहीं पाते)

(३८)

शब्दों! समस्त वातावरण को झकझोर देने वाली तुम्हारी लहरें उस ध्यानस्थ निरुपम भगवान् के पास जाकर कहीं झकझोरने वाले अपने स्वभाव को ही न भूल बैठें – इस बात का ध्यान रखना। क्योंकि संसार में महात्माओं का अद्भुत प्रभाव होता है।

(३९)

शब्दों! यहाँ से जाने के पहले ही समय में तुम्हारा भेद होगा (बिखर जाओगे)। किन्तु इस बात की चिन्ता न करना। आकाश में फैले हुए सहयोगियों (पुद्गल-स्कन्धों) को लेकर आगे चले जाना। प्रगति के लिए जो प्रयाण किया जाता है, उसमें बाधाएँ अवश्य आती हैं, किन्तु उत्साही व्यक्ति दूसरों का पर्याप्त सहयोग पाकर उन्हें पार कर जाते हैं।

१—"शब्द तीन प्रकार के होते हैं—(१) जीव (२) अजीव और (३) मिश्र। केवल जीव के प्रयत्न से पैदा होने वाला शब्द जीव शब्द कहलाता है, जैसे—मौखिक शब्द। जिसमें जीव का प्रयत्न न हो उसे अजीव शब्द कहते हैं, जैसे—मेघ की गड़गड़ाहट। जीव और अजीव—इन दोनों के समवेत प्रयत्न से जो शब्द पैदा होता है, उसे मिश्र शब्द कहते हैं, जैसे—मुँह और बाजे के संयोग से पैदा होने वाला शब्द।"

प्यारो ! इस घर में तुम टेक के कोने को छू देना। [illegible] अन्तर पटल में अपनी स्मृति अंकित कर देना। मैं आशा करती हूँ, इस विश्व-यात्रा में तुम्हें जो विशिष्ट अनुभव होंगे, उनका भगवान् के समक्ष प्रयोग करने में तुम सन्देह नहीं करोगे।

(१८)

निपुण व्यक्तियों को कहीं पर अपने अभिप्राय वैखरी ध्वनि से व्यक्त करने चाहिए व कहीं पर उचित हो तो मध्यमा ध्वनि के सहारे और ऐसे अवसर में पश्यन्ती ध्वनि को भूलना भी ठीक नहीं होता। आंसुओ ! तुम जब भगवान् के पास पहुँचोगे, तब परा ध्वनि का स्पर्श भी तुम्हें करना होगा[1]।

(१९)

दूर से वस्तु को देखने (ग्रहण-करने) में आंख एक बहुत निपुण इन्द्रिय है। किन्तु उसमें तुम अपना प्रतिबिम्ब डाल नहीं सकोगे। क्योंकि तुम बहुत सूक्ष्म हो। अतः कान की शरण में जाना तुम्हारे लिए ठीक होगा। उससे तुम अपने को व्यक्त कर सकोगे। कार्य चाहे छोटा हो या बड़ा, उसका प्रारम्भ विचारपूर्वक ही होना चाहिए।

१—शब्द की चार अवस्थाएं होती हैं :—

(१) वैखरी—स्पष्ट स्वर।

(२) मध्यमा—क्षीण स्वर।

(३) पश्यन्ती—अन्तःकरण का स्वर।

(४) परा—बीज-अवस्थागत स्वर।

अन्तिम प्रकार की ध्वनि दिव्य-शक्ति की परिचायिका है और ध्वनि-तत्त्व की महाशक्तिमय अवस्था है। यह अव्यक्त रहती है। इसका श्रवण आत्मोपलब्धि के उपरान्त ही हो सकता है। परा ध्वनि भाषानुसार विभिन्न नहीं होती है। आत्मा की ध्वनि होने से सभी भाषाओं में एक ही होती है।

(४०)

तद् युष्माभिः पुनरपि पुनः पूर्णीयं समन्तं,
यस्मात्तत्रोपकरणमपि प्राप्स्यते मार्गदर्शि ।
संप्राप्तानां लघु भगवता भोक्ष्यते स्वागतं वो,
यन्नोपेक्ष्या प्रथमतिथयः सद्भावार्थाः प्रबुद्धैः ॥

(४१)

अग्रे चेतः स्फुरितमधुना भाति युष्मद्-ग्रहाय,
रसतिर्लङ्घनीयान्तरासा ।
[illegible] निश्चयं च—
एव सख्यं वहेरन् ॥

(४०)

शब्दों ! तुम्हें पहले पुनः-पुनः चेष्टा करके उनके (भगवान् के) कान के छिद्र को भरना है। पीछे तुम्हें वहाँ रास्ता दिखाने के लिए उपकरण[1] मिल जाएगा। भगवान् जब तुम्हें पा लेंगे, तब तुम्हारी स्फुट अभिव्यक्ति[2] होगी। यह तो स्पष्ट है कि प्रबुद्ध व्यक्ति मिलने के लिए आये हुए अतिथियों की उपेक्षा नहीं करते।

(४१)

शब्दो ! उसके आगे तुम्हें लिवा ले जाने के लिए भगवान् का मन तुम्हारे सामने[3] आयेगा। उसके साथ चलते हुए बीच में सन्देहों[4] की बस्ती आए, उसे झट लांघ जाना। भगवान्[5] ईहा और अपोह[6] के द्वारा तुम्हें अपना लेंगे। क्योंकि सोच-विचार कर परिचय करने वाले ही मित्रता निभाते[7] हैं।

१—श्रोत्र (कान) इन्द्रिय के दो प्रकार होते हैं :— (१) निर्वृत्ति और उपकरण। कर्ण-शष्कुली (कर्ण की पपड़ी) और कदम्ब के फूल के रूप में जो कान की बाहरी और भीतरी बनावट है, वह निर्वृत्ति-इन्द्रिय कहलाती है। निर्वृत्ति की वह शक्ति जो शब्द सुनने में उपकारक बनती है, उपकरण-इन्द्रिय कहलाती है।

२—यहाँ शब्द-ज्ञान का क्रम बताया गया है। शब्द सुनने में सबसे पहले व्यञ्जनावग्रह होता है। कान (उपकरण-इन्द्रिय) और शब्द का सम्पर्क होने पर पहले-पहल जो अस्पष्ट ज्ञान होता है, उसे व्यञ्जनावग्रह कहते हैं। जैसे:—कान में शब्द के आने पर कान से किसी चीज का स्पर्श हुआ—ऐसा ज्ञान होना।

३—व्यञ्जनावग्रह के बाद अर्थावग्रह होता है। जाति, लिंग आदि के निर्देश बिना केवल सामान्य का "कुछ शब्द है", इस रूप में वस्तु का ग्रहण अर्थावग्रहण कहलाता है। व्यञ्जनावग्रह की अपेक्षा इसमें कुछ स्पष्ट ज्ञान होता है।

४—अर्थावग्रह के बाद ईहा होती है किन्तु बीच में संशय होता है। एक निश्चित विकल्प को न ग्रहण करके अनेक अनिश्चित विकल्पों को ग्रहण करने वाला ज्ञान-संशय कहलाता है। जैसे, यह शंख का शब्द है या सितार का।

५—"अमुकेन, भाव्यम्"—"यह होना चाहिए" इस प्रकार का ज्ञान ईहा कहलाता है जैसे,—यह सितार का शब्द होना चाहिए।

६—ईहा के बाद अपोह (अवाय) होता है। "अमुक एवाय मित्यवाय."—'यह वही है" इस प्रकार का ज्ञान अपोह कहलाता है। जैसे,—यह सितार का शब्द है, शंख का नहीं।

७—अपोह के अनन्तर धारणा होती है। "सएव दृढतमावस्थापन्नो धारणा"—अपोह की दृढ़तम अवस्थिति धारणा कहलाती है। यहाँ जो सत्य का सातत्य निर्वाह है, वही धारणा है।

अक्षज्ञाने क्वचिदथ भवेत् संशयो व्यत्ययो व
भावज्ञप्तौ मम न पृथुलस्तेन कार्यः प्रयत्नः
प्रत्यक्षेण प्रतिकृतिमिमां मानसीं द्रष्टुमिन्
देतत्कृत्वा मालम्बनीय

(

ध्येयं सैषोऽवगणयति तान्
येषां क्षेपैः कुटिलगतिभि
तस्माद् रेखा युवतिविषया
नालेख्या ही चटुलचरणै

दूत ! मेरे अभिप्राय[1] को समझने के लिए तुम अधिक प्रयास न करना, क्योंकि इन्द्रिय-ज्ञान में सत्य और विपर्यय होने की आशंका रहती है। इसलिए उससे कभी सम्यग्-ज्ञान नहीं भी होता है। तुम निपुण हो अतः ऐसा काम करना जिससे भगवान् अपने प्रत्यक्ष ज्ञान (मनः[2] पर्यव ज्ञान) के द्वारा मेरी मानसिक विचार-आकृतियों को जानने की थोड़ी सी चेष्टा कर लें। उसके बाद तुम्हें मौन कर लेना है।

(४३)

स्त्रियों के जिन कटाक्षों के सामने वक्र गतिवाले व्यक्ति भी अपनी वक्रता भूल बैठते हैं, भगवान् उन कटाक्षों की भी अवगणना करते है। इसलिए तुम यह ध्यान रखना कि अपनी (शब्दों की) कम्पनशील चंचल तरंगों से कामना (काम) को उत्तेजन दे सके, ऐसे स्त्री सम्बन्धी[3] रेखा-चित्र उनके समक्ष मत खींचना।

१—"विपरीतैककोटिनिष्टङ्कनं विपर्ययः" वस्तु में उसके विरुद्ध किसी एक धर्म का निश्चय करना विपर्यय कहलाता है, जैसे, सीप में चाँदी का निश्चय करना।

२—मानसिक चिन्तन के साथ विचारों की विभिन्न प्रकार की आकृतियां बनती हैं। वे आकृतियां मनोवर्गणा के (मन रूप में परिणत होने वाले) पुद्गलों से बनती हैं। इन मानसिक आकृतियों का इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना केवल आत्मा के द्वारा साक्षात्कार करके दूसरों के मनोगत भावों को जानने वाला ज्ञान मनः पर्यव (मनः पर्याय) ज्ञान कहलाता है।

३—यह विज्ञान सम्मत तथ्य है कि ध्वनियां जमीन पर विभिन्न प्रकार की रेखाएं खींचती हैं।

(४२)

अक्षज्ञाने वरनिकष भवेन् संशयो ऽन्यथा वा,
भावज्ञप्तौ मम न कुशलस्तेन कार्यः प्रयत्नः।
प्रत्यक्षेण प्रतिकृतिमिमां मानसीं द्रष्टुमिच्छे-
देतत्कृत्वा चतुरविधिभिर्मानमालम्बनीयम्॥

(४३)

ध्येयं सर्पोऽवगणयति तान् कामिनीनां कटाक्षान्,
येषां क्षेपैः कुटिलगतिभिर्वक्रताऽत्याजि वक्रैः।
तस्माद् रेखा युवतिविषयाः कामनां तेजयन्त्यो,
नालेख्या ही चटुलचरणैर्वस्तरङ्गैः सकम्पम्॥

स्कंदो ! मेरे अभिप्राय[1] को समझने के लिए तुम अधिक प्रयास न करना, क्योंकि इन्द्रिय-ज्ञान में संशय और विपर्यय होने की आशंका रहती है। इसलिए उससे कभी सम्यग्-ज्ञान नहीं भी होता है। तुम निपुण हो अतः ऐसा काम करना जिससे भगवान् अपने प्रत्यक्ष ज्ञान (मनः[2] पर्यव ज्ञान) के द्वारा मेरी मानसिक विचार-आकृतियों को जानने की थोड़ी सी चेष्टा कर लें। उसके बाद तुम्हें मौन कर लेना है।

(४३)

स्त्रियों के जिन कटाक्षों के सामने वक्र गतिवाले व्यक्ति भी अपनी वक्रता भूल बैठते हैं, भगवान् उन कटाक्षों की भी अवगणना करते हैं। इसलिए तुम यह ध्यान रखना कि अपनी (शब्दों की) कम्पनशील चचल तरंगों से कामना (काम) को उत्तेजन दे सके, ऐसे स्त्री सम्बन्धी[3] रेखा चित्र उनके समक्ष मत खींचना।

१—"विपरीतैककोटिनिष्टङ्कन विपर्ययः" वस्तु में उसके विरुद्ध किसी एक धर्म का निश्चय करना विपर्यय कहलाता है, जैसे, सीप में चाँदी का निश्चय करना।

२—मानसिक चिन्तन के साथ विचारों की विभिन्न प्रकार की आकृतियां बनती हैं। वे आकृतियां मनोवर्गणा के (मन रूप में परिणत होने वाले) पुद्गलों से बनती हैं। इन मानसिक आकृतियों का इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना केवल आत्मा के द्वारा साक्षात्कार करके दूसरों के मनोगत भावों को जानने वाला ज्ञान मनः पर्यव (मनः पर्याय) ज्ञान कहलाता है।

३—*यह विज्ञान सम्मत तथ्य है कि ध्वनियां जमीन पर विभिन्न प्रकार की रेखाएं खींचती हैं।*

एते शब्दा निशितविशिखा मन्मथस्येति मत्वा,
नोपेक्षेत प्रवर-विरतिः कार्यलग्नांश्च युष्मान् ।
तन्निश्वासा भगवति हि मेऽमोघ-संप्रार्थितायाः,
श्रद्धापट्टं स्फुटमधिगुणं सम्यगावध्य यात ॥

(४५)

भद्रं भूयात् पथि विचरतां श्रेयसे प्रस्थितानां,
दिग्-व्यामोहं न खलु जनयेत् क्वापि वातः प्रतीपः ।
आशादीपा अभिनवधनाः प्रावृषेण्या इवाश्च,
निष्प्रत्यूहाः स्युरिह यदि तत् कः स्मरेद् वामवातम् ॥

(४६)

श्रद्धाश्रूणि प्रकृतिमृदुता मानसोद्घाटनानि,
निःश्वासाश्चाखिलमपि मया स्वीधनं विन्ययोजि ।
मानुक्रोशो मयि परमतः सैष भावी नवेति,
सापेक्षाणामसरसपरं स्यादुदग्रान्तरेषाम् ॥

(४७)

दैव स्पृष्ट्वा गलिरपि नमस्येतगा हि प्रयाति,
... स्वीयं दिशि-दिशि लसन् विद्युदालोक एषः ।
...भिनिवर्णानानुरङ्गणास्मः ... कः,
... लोका जगति यतोऽस्मैहि निरांदकाः स्युः ॥

भगवान् के पास जाकर जब तुम मेरी बात कहने लगोगे, तब कहीं वे उत्कृष्ट त्यागी यह मानकर तुम्हारी उपेक्षा न कर दें कि ये शब्द तो कामदेव के तीखे बाण हैं। इसलिए शब्दों ! मेरी गहरी श्रद्धा का पट्ट भली भांति बांध कर जाओ। जिससे मेरी अभ्यर्थना सफल हो सके।

(४५)

तुम श्रेयस् के लिए प्रस्थान कर रहे हो, तुम्हारा मार्ग मंगलमय हो और प्रतिकूल वायु तुम्हें दिङ्मूढ न बनाए। यदि आशा के दीपक ज्यों के त्यों जलते रहें, वर्षा के मेघ निर्विघ्न बरस जाएं और ध्वनि (सम्बोधन) यथावत् सुनाई दे, तो प्रतिकूल पवन से कौन डरेगा ?

(४६)

शब्दों ! श्रद्धा के आंसू, प्रकृति की कोमलता, हृदय का उद्घाटन (खोलकर रखना) और आहें—यह नारी का वैभव है, सो सब मैं प्रभु के चरणों में समर्पित कर चुकी हूँ। इस स्थिति में भी भगवान् मुझ पर पसीजेंगे या नहीं, नहीं कहा जा सकता। क्योंकि अपेक्षा रखने वालों का जगत् दूसरा है और निरपेक्षों का दूसरा।

(४७)

सूरज आकाश में थोड़ा सा प्रकाश फैलाकर उसे समेट चला जाता है। समस्त दिशाओं को उद्योतित करने वाले इस विद्युत-प्रकाश में भी स्थिरता कहां है ? ऐसा महापुरुष भी कौन है, जो मूढ, अज्ञ और अन्धेरे में भटकते हुए व्यक्तियों को हाथ पकड़ कर उबार लें। कार्य प्रारम्भ करने में तो बहुत से व्यक्ति उत्साह दिखाते हैं, किन्तु उसका निर्वाह करने वाले जगत् में कितने होते हैं ?

भद्रा-पत्रा प्रतिकृतिरलं स्यान्न पुत्राम्बुदानाम्,
ते भद्रान्न् विरहविनतान् प्राणहारं हरेयुः ।
देहःस्पर्शात्पातु विहरति परिनिर्विष्टोऽथ सौख्या-
सम्पल्लाभा भवति विपदान् केवलं ग्राहकान् हि ॥

(४९)

धन्या निद्रा स्मृति-परिगृहं निद्रुते या न देवं,
धन्याः स्वप्नाः गुणिगणकृते ये न साक्षान्नयन्ते ।
जाग्रत्कालः पलमपि न वा त्यक्ष्यति सोढुं सहोऽभू-
त्कलाप्योंऽवलाकः क्वचिदपि न वैकान्तदृष्ट्या विचार्यः ॥

(५०)

नैराश्येन ज्वलति हृदये तापलब्धोद्भवानां,
निःश्वासानां ध्वनिभिरुदितं-गाहिरे व्योम-मार्गाः ।
साकाराणि व्यथितमनसश्चक्रिरे वाचिकानि,
नासंभाव्यं किमपि हि भवेद् पूतवंशोदयानाम् ॥

(५१)

आशावल्ल्या इव दददवष्टम्भमुच्चैः पतन्त्या-
श्चित्तं सिञ्चन्निव दवगतं मन्थरोऽसौ बभूव ।
आरम्भाणां प्रथम चरणे लब्धसंपल्लवानां,
साश्चर्यं यच्छुभशकुनता मान्यतां याति लोके ॥

श्रद्धालु व्यक्तियों के सम्मुख उनकी श्रद्धा से प्रकल्पित श्रद्धेय व्यक्ति का प्रतिबिम्ब भी नहीं रहता, जिस पर वे अपना ध्यान टिकाये रख सकें। बेचारे श्रद्धालु जब श्रद्धेय के विरह से छटपटाते हैं, तब उन्हें आश्वासन देना तो दूर रहा किन्तु वे उनके प्राणों को ही संकट में डाल देते हैं। श्रद्धेय व्यक्ति का शरीर स्थूल है, इसलिए वह बाहर चलता है और सबको दीखता है किन्तु उसकी छाया सूक्ष्म है अत. वह स्वच्छ-ग्राहक में ही प्रतिबिम्बित होती है।

(४६)

भगवन् ! निद्रा धन्य है जो तुझे नहीं भूलती, क्योंकि तू स्मृति में सदा बसा रहता है। स्वप्न धन्य है जो पुनः-पुनः तेरा साक्षात्कार करते हैं। किन्तु यह जागृत-काल क्षण भर के लिए भी तुझे न सह सका—तेरा साक्षात्कार न कर सका। अतः किसी भी वस्तु के बारे में एकान्ततः यह कहना संगत न होगा कि अमुक वस्तु श्लाघ्य ही है या अमुक वस्तु श्लाघ्य नहीं।

(जागृत-काल श्लाघ्य गिना जाता है फिर भी वह चन्दनबाला के लिए वरदान न बना जबकि निद्रा, स्वप्न-काल श्लाघ्य नहीं गिना जाता है, फिर भी वह उसके लिए वरदान बना)

(५०)

निराशा से धधकते (चन्दनबाला के) हृदय में संताप द्वारा जो सिसकियां पैदा हुई, उनकी ध्वनिया आकाश में फैल गई और उन्होंने (चन्दनबाला के) व्यथा भरे हृदय के सन्देशों को साकार बना दिया। पवित्रता में जन्म पानेवालों के लिए कोई कार्य असंभव नहीं होता।

(५१)

ऊंचे से गिरती हुई आशा-वल्लरी को सहारा देने के लिए या अन्तर्व्यथा के दावानल से सुलगते हृदय को शान्त करने के लिए भगवान् के पैर कुछ धीमे हो चले। कार्य के प्रारम्भ में थोड़ी सी सफलता का मिलना भी संसार में आश्चर्य के साथ शुभशकुन गिना जाता है।

आश्वस्तापि क्षणमथ न सा बाष्पसङ्गं मुमोच,
प्लुष्टो लोकः पिबति पयसा फूत्कृतंश्चापि तक्रम् ।
संप्रेक्षायामधृतितरलाश्चक्षुषां कातराणा—
मासन् भावाः किमिव दधतो मज्जनोन्मज्जनानि ॥

(५३)

बाष्पा जाताः प्रकृतमफलाश्चापि निःश्वासशब्दाः,
संदेशा मे मनसि लिखिता व्यञ्जनं लब्धवन्तः ।
दैवं नूनां दिशमुपदिशद् भाति भास्वानकस्मात्,
पादान् धत्ते पुनरविमुखान् सर्वतश्चक्षुरेषः ॥

(५४)

केयं माया व्यरचि विधिना भ्रान्तिराहो प्रवृत्ता,
स्वप्नोऽलोकि क्वचन कुहकं केनचित् प्रस्तुतं वा ।
मोघानेतान् व्यधिषि विकलान् कांश्चिदुच्चैर्विलापान्,
देवः साक्षाद् विहरति पुरः पावनो मां पुनानः ॥

(५५)

प्राप्याऽप्राप्यं प्रथमपलकेऽन्तर्गतानां व्यथानां,
प्रादुर्भावो भवति नियमो नैष जातोऽत्र वन्ध्यः ।
तासां जाता स्मृतिरभिनवा प्रस्तुतानां, गतानां,
वाक् संवृत्ता भगवति पुरस्तादुपालम्भलोला ॥

लौटते हुए भगवान् के रुक जाने से ढाढस मिलने पर भी कुछ देर तक चन्दनबाला के आंसू न रुके। क्योंकि दूध से जला व्यक्ति छाछ को भी फूंक-फूंक कर पीता है। उस समय चन्दनबाला की अधीर आंखों के प्रेक्षण (देखने) में अस्थिर—चपल भाव खेल-तैर रहे थे।

(५३)

चन्दनबाला सोचने लगी कि मेरे आंसू और ये निःश्वास के शब्द प्रारम्भ किए हुए कार्य में सफल हो गए। क्योंकि मेरे मानसिक अभिप्राय अभिव्यंजित हो चुके हैं। भाग्य मुझे नई दिशा दे रहा हो, ऐसा लगता है। अकस्मात् यह सर्व चक्षु सूर्य—प्रत्यक्ष ज्ञानी भगवान् मेरे सम्मुख अपनी किरणें बिखेर रहे हैं—चरण बढ़ा रहे हैं।

(५४)

क्या यह कोई विधि का मायाजाल था या मुझे यों ही भ्रम हुआ? मैंने क्या कोई स्वप्न देखा या किसी ने मेरे सम्मुख इन्द्रजाल की सृष्टि कर डाली? क्या मैंने यह इतना विलाप व्यर्थ ही किया, जबकि मेरे इष्टदेव मुझे पावन करने के लिए प्रत्यक्ष खड़े हैं।

(५५)

दुर्लभ वस्तु पाकर पहले क्षण में अन्तर व्यथा छलक पड़ती है। यह नियम चन्दनबाला के लिए अपवाद न बना। उसे वर्तमान और अतीत के कष्टों की स्मृति हो चली। उसकी वाणी भगवान् के सम्मुख उपालम्भ (उलाहने) के स्वर में मुखर हो उठी।

राज्यं त्यक्तुं परनृपतिना पारवश्यं प्रणीता,
प्राणान्तोऽपि स्फुटितनयनैरेभिरालोकि मातुः।
वेश्याहर्म्येऽप्यकृतनिगमनं श्राविता विक्रयेण,
विक्रं श्राद्धे विपणिगरणी मूल्यमायोजि भूयः

(५७)

बद्धा क्रूरं करचरणयोः शृंखलैरायसैर्हा,
मूर्ति प्राप्ता विकचशिरसि प्रज्वलन्त्यः शलाकाः।
कष्टाश्रूणां सरिति सततं मममास्यं विलोक्य,
त्वां यत्फुल्लं तदपि भगवन्! न त्वया द्रष्टुमिष्टम् ॥ (युग्मम्)

(५८)

गर्भेऽप्यर्भस्त्वमिह भगवन्! मातरश्चानुकम्प्य,
सद्योऽरौत्सीः सहजचलनं लक्ष्म गर्भं गतानाम्।
धाराश्रूणामगमदुदयं सौधमध्ये वरिष्ठा,
को जानीयाज्जगति महतां साशयं चेष्टितानि ॥

(५९)

ज्येष्ठभ्रातुर्नयन-सलिलं त्वामरौत्सीद्दिदीक्षुं,
मन्ये जन्माऽभवदिह तव प्रोञ्छितुं वाष्पधाराम्।
वाष्पान् वोढुं किमपि विवशा स्वामिनाऽहं कृतास्मि,
दैवे वक्रे भवति हि जगत् प्राञ्जलश्चापि वक्रम् ॥

(५६-५७)

शत्रु-राजा (शतानीक) ने मुझे राज्य छोड़ने के लिये विवश किया। मैंने इन फूटी आखों से अपनी मां का प्राणान्त भी देखा। न चाहने पर भी वेश्या के घर मुझे बिक कर जाना पड़ा। इसके बाद बाजार में मुझे फिर से बेचने के लिए मेरी बोली लगाई गई। लोह की जजीरों से मेरे हाथ-पैर क्रूरता-पूर्वक बाधे गए। मेरा सिर मुण्डित करवाकर उसमें तप्तशलाकाओं से दाग लगाए गए। इस प्रकार दु ख के आसुओं की नदी में मेरा मुह डूबा हुआ था। आज वह तुझे देखकर खिला, किन्तु भगवन् ! उसे भी तूने देखना न चाहा।

(५८)

भगवन् ! तूने माता को पीड़ा न हो, यह देख गर्भ मे सहज हलन-चलन भी बन्द कर डाला, जो गर्भस्थ प्राणी का चिन्ह गिना जाता है। उस समय महल में आसुओं की धाराए छलक पड़ीं। महापुरुषों की साभिप्राय चेष्टाओं (क्रियाओं) को कौन समझ सकता है ?

(५९)

तेरे बड़े भाई (नन्दिवर्धन) के आसुओं ने तुझे दीक्षा लेने से रोका। ऐसा लगता है कि आसुओं को पोंछने के लिए ही तेरा जन्म हुआ। किन्तु उनका (आसुओं का) भार ढोने के लिए तूने मुझे विवश किया। संसार में भाग्य के विपरीत हो जाने पर सीधे भी टेढे बन जाते हैं, न रूठने वाले भी रूठ जाते हैं।

(६०)

श्रद्धेयानामधिकृतमिदं चित्रमस्ति प्रभुत्वं,
श्रद्धालूनां विसदृशमहो चेतसः सौकुमार्यम् ।
भारं स्फारं वहति यदहो तानुपालब्धुमारा-
दासन्नांश्च प्रति भवति तत् स्विन्नमास्था प्रगल्भम् ॥

(६१)

पीडाकूले जिनवरमसौ दीर्घनिःश्वासवात-
क्षिप्तैर्दूरं स्नपयितुमिव प्राभवच्छाकरौघैः ।
यच्छ्रद्धेयानरतिनिरता आक्षिपेयुश्च तत्र,
स्नेहोत्कर्षस्तदिह कृतिभिः सन्ति ते वन्दनीयाः ॥

(६२)

तीव्रं नम्रंकरणमनिलं फाल्गुनं वेगवन्तं,
किं न्यक्कुर्यात् परिणतदला काममारामराजिः ।
तस्मादन्यः परिमलवहः पुष्पकालेऽपि न स्याद्,
यस्माद् रंहः सहनमुचितं स्वोदयस्य प्रसिद्ध्यै ॥

(६३)

घोरे तापे सततमवहद् वाष्पधारा विचित्रं,
शैत्ये लब्धे भगवति पुनः सम्मुखीने क्षणेन ।
सा संरुद्धा विरलतनवः केवलं बिन्दवस्ते,
तस्थुर्भिक्षा-ग्रहण-सरणिं स्वामिनो द्रष्टुमुत्काः ॥

प्रभावीणा

(६०)

श्रद्धालु व्यक्तियों का मानस असाधारण सुकुमारता लिए होता है। वह दूर से श्रद्धेय को उलाहने देने के लिए बहुत कुछ सोचता है किन्तु उन्हें अपने समीप पाकर वह श्रद्धा से पसीज जाता है—उन्हें उलाहने देना भूल जाता है। श्रद्धास्पद व्यक्तियों ने ऐसी ही कोई अद्भुत प्रभुता फैला रखी है।

(६१)

चन्दनबाला ने अपनी आन्तरिक पीड़ा (नदी) के किनारे पर खडे भगवान् को लम्बे नि:श्वासों की पवन से आंसुओं की बौछार कर नहलाया। श्रद्धालु व्यक्ति कष्टों से ऊबकर श्रद्धेय पर आक्षेप लगाने लगते हैं। उसका कारण स्नेह का उत्कर्ष ही है। इसीलिए मनस्वियों द्वारा श्रद्धालु प्रशंसनीय हैं।

(६२)

पके पत्तों वाले बगीचे फाल्गुन के पतझड में तूफान का तिरस्कार नहीं करते। यदि वे तिरस्कार करने लग जाए तो बसन्त में उनके फूलों की सौरभ कौन फैलाए? इसलिए अपने अभ्युदय के लिए कहीं अन्याय को सहना भी उचित होता है।

(६३)

जब तक चन्दनबाला के हृदय में घोर ताप (दुःख की गर्मी) था, तब तक निरन्तर आंसुओं की धारा बही, किन्तु भगवान् के सम्मुख आ जाने से ज्योंही वह ताप शीतल हुआ, त्योंही वह धारा भी बन्द हो गई। आंसुओं की केवल दो ही दुबली सी बूँदे बच पाई, जो भगवान् की भिक्षा लेने की विधि देखने के लिए उत्सुक थीं।

बोद्धुं नालं स्वमतिरनिशं जीवनस्याध्वनीह,
गताः शैलाः कति च कति वा मोटनानि भ्रमा वा ।
अन्यं कश्चित् व्रजति तनुमानेकमुल्लङ्घ्य पूर्व-
मावर्तं तद् भवति महसा विस्मृतिः प्राक्तनस्य ॥

(६५)

प्रत्येकस्मिन् नियतमुभयोः पार्श्वयोःसन्ति कुम्भाः,
केचित् पूर्णाः प्रवरसुधया हालया भूरयस्तु ।
हालोन्मत्ताः प्रथमचरणे ह्यन्यपार्श्वानपेक्षा,
द्वैतीयीकं नयनममलं हन्त नोन्मीलयन्ति ॥

(६६)

उन्मत्तानां दिनमथ निशा नैति कश्चिद्विशेषः,
कार्याकार्ये तनुरपि भिदा नैति तेषां गुणोऽसौ ।
यावच्चक्षुर्भवति पिहितं हालया तावदेषां,
सौख्यं पश्चाद् भवति तिमिरं व्याप्तमक्ष्णोः समन्तात् ॥

(६७)

अम्भोवाहा विघटनमिमे जृम्भणं चापि यान्ति,
वाता ग्रीष्मं दधति वसनं शीतलं जातु तेऽपि ।
भूमिं प्राप्ता अपि जलकणा व्योम-मार्गं श्रयन्ते,
निद्रोन्निद्रा क्रममनुगता केवलं मुद्रितेयम् ॥

स्वयं अपनी बुद्धि द्वारा बनाए हुए जीवन के मार्ग में कितने गड्ढे, पहाड़, घुमाव और चक्कर हैं, इसे कौन जान सकता है। मनुष्य एक आवर्त्त (चक्कर) को लांघ दूसरे आवर्त्त में घुसता है, उस समय पहला आवर्त्त सहसा भुला दिया जाता है।

(६५)

प्रत्येक मार्ग के दोनों ओर घडे रखे हुए हैं। एक ओर के घडे अमृत से लबालब भरे हैं तथा दूसरी ओर के हाला से। हाला के नशे में उन्मत्त बने व्यक्ति पहले ही कदम से हाला की ओर निहारते चले जाते हैं। वे दूसरी ओर निहारने के लिए आंख तक नहीं खोलते।

(६६)

जो हाला के नशे में उन्मत्त हैं, उनके लिए दिन-रात एक सरीखे हैं और कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य में कोई भी भेद नहीं— यह उनकी विशेषता है। जब तक उनकी आंखें हाला के नशे में मुंदी रहती हैं, तब तक उन्हे सुख की अनुभूति होती है। इसके आगे उन्हें सारा संसार धुंधला सा लगत है। हाला की दुनिया से आगे भी कोई सुख है, इसकी वे कल्पना भी नहीं करते।

(६७)

बादल बिखरते हैं और मंडराते हैं। हवाएं कभी गरम साड़ी पहनती है और कभी ठंडी। जल की बूंदें धरती पर गिरकर फिर आकाश का मार्ग पकड़ती हैं। खिलने के बाद मुरझाना और मुरझाने के बाद खिलना, यह विश्व का क्रम है। किन्तु इस अभागिन को मुरझाने के बाद खिलने का अवसर ही न मिला।

यत् मापेक्षा जगति पुरुषैर्योपितः शक्तिमद्भिः,
सन्ति प्राप्तास्तत इह चिरं भोग्यवस्तुप्रतिष्ठाम् ।
चेतोदार्ढ्यं प्रकृतिसुलभस्त्याग-भावोऽपि तासा-
मेधोभावं व्रजति सततं कामवह्नौ नराणाम् ॥

(६६)

स्त्रीणां प्राणा न खलु विशदं मूल्यमाधारयन्ति,
पुंसां कामा अवितथपथाः स्युर्विधिश्चित्र एषः ।
एषा नारी स्वजनवियुतान्याश्रया जीवनस्य,
मूल्यं नीचैर्नयतु बहवो द्रष्टुमित्युत्सुका हि ॥

(७०)

प्रायो लोकः प्रकृतकुशलो नैव कर्त्तव्य-दक्षः,
द्रष्टुं यत्नं सृजति विगतं नैव सम्पद्यमानम् ।
स्त्रीणां भोगश्चिरपरिचितस्तेन तत्रैति मोहं,
नामामन्ये प्रकृतिसुलभाः सद्गुणा द्रष्टुमिष्टाः ॥

(७१)

दग्धोत्सिन्ना प्रबलदहने पुष्पिकेयं प्रभूत—
मेषा म्लानाऽतुलहिमहता वल्लरी चापि जात्या ।
एषा यष्टिः किमपि लुलिता हन्त भारातिरेका—
च्चैतन्यं को हरति न खलूद्बोधयेत् कश्चिदेकः ॥

शक्तिशाली पुरुषों के अधीन रहने के कारण महिलाएं उनकी भोग्य वस्तुएं बनी हुई हैं। उनकी मानसिक दृढ़ता और सहज त्याग-भावना पुरुषों की कामाग्नि मे ईन्धन बन रही है।

(६६)

स्त्रियों के प्राणों का कोई विशेष मूल्य नहीं आका जाता है। पुरुषों की इच्छाएं पूरी होनी चाहिए, यह कैसा विचित्र नियम है। बहुत से पुरुष तो यह चाहते हैं कि नारी अपने परिवार से बिछुड़कर पुरुषों की दासी बन जाए और अपने जीवन का मूल्य नीचे गिराकर पतित बन जाए।

(७०)

लोग प्राय: रूढ़ि पर चलने के अभ्यासी होते हैं किन्तु क्या करना चाहिए— इसे नहीं सोचते। वे अतीत को देखने का प्रयत्न करते हैं पर वर्तमान को नहीं। स्त्रियों के भोग से चिर परिचित होने के कारण उनमें उनका आकर्षण होता है, इसलिए वे उनमें मूढ बन जाते हैं। किन्तु वे यह नहीं जानते कि उनके सहज-सुलभ गुणों का सम्मान कैसे करना चाहिए ?

(७१)

यह रोटी आग की लपटों में खूब पकी और जल गई। यह अच्छी जाति की बेल पाले से ठिठुर कर कान्ति-विहीन हो गई। यह लकड़ी अधिक भार के लद जाने से किस तरह लुल गई। चैतन्य को कौन नहीं छीनता ? किन्तु उसे जगाने वाला तुम्हारे जैसा कोई विरला ही होता है।

(७२)

स्थापितुमप्यसमपि गुरुतामग्रतात् प्रस्तराणां,
तेनाधन्तं सहजमृदुता त्वां श्रिताभावनानाम् ।
एते शैला अधिकृतशिलाः प्रोन्नताः सश्रयेन,
सर्वान्मानं दधति परमं मस्तके कृत्ताश्च ॥

(७३)

अन्धा श्रद्धा स्पृशति न दृशं तर्क एषाऽनृता धीः,
श्रद्धा काश्चिद् भजति मृदुतां कर्कशत्वञ्च तर्कः ।
श्रद्धा साक्षाज्जगति मनुते कल्पितामिष्टमूर्ति,
तर्कः साक्षात् प्रियमपि जनं दीक्षते संदिहानः ॥

(७४)

चक्षुर्ग्राह्यां प्रतिकृतिमिमां पश्यति स्वप्रभाभिः,
संस्थानं सत् तदितरदुत त्वग् मनोज्ञतरा वा ।
श्रद्धैवान्तः प्रविशति नृणां हृद्वशीकार एष,
आत्मा प्राप्यो भवति हि जनैस्तर्कणामस्पृशद्भिः ॥

(७५)

श्रद्धे ! धीरं व्रज भगवतः पार्श्वदेशे मुमुक्षो-
र्वृद्धे काये वहसि वसतिं नेति संकल्पनीयम् ।
क्षुद्रे कुम्भे सदपि सलिलं काममाकृष्टमंशो-
र्धाम्नामोघैर्गगनमतुलं व्याप्य किं नाम्बुदःस्यात् ॥

भगवन् ! पत्थर (सोना, चांदी, रत्न आदि) को न रखने के कारण तू ऊँचा है। इसीलिए अथ से इति तक तेरी भावनाएं सुकुमार हैं। ये पहाड़ जो शिलाओं के संग्रह से ऊंचे बने हुए हैं, सर्वतः कठोर हैं और उनकी चोटियां (क्रूर) नुकीली हैं।

(७३)

यह धारणा मिथ्या है कि श्रद्धा अन्धी है और तर्क के आंख है। श्रद्धा सुकुमारता लिए हुए है और तर्क कर्कशता लिए हुए। श्रद्धा में यह विशेषता है कि वह कल्पना द्वारा बनाई हुई अपने श्रद्धेय की मूर्ति को साक्षात् मान लेती है, जब कि तर्क साक्षात् दीखने वाले श्रद्धेय पुरुष को भी सन्देह भरी दृष्टि से देखता है।

(७४)

यह आकृति अच्छी है या बुरी, यह चमड़ी सुन्दर है या असुन्दर—इस तरह आंख अपने प्रकाश से बाहरी रूप को देखती है। श्रद्धा ही मनुष्यों के अन्तस्तल में प्रवेश कर पाती है। वह ही हृदय को जीतने के लिए वशीकरण है। तर्क का संस्पर्श न करने वाले व्यक्ति ही आत्मा—वस्तु तत्त्व को पा सकते हैं।

(७५)

श्रद्धे ! तू भली भांति मुमुक्षु भगवान् के पास चली जा। तू शरीर [illegible] रह रही है, इसलिए इस दुविधा में मत पड़ जाना कि मैं वहाँ कैसे जाऊं? [illegible] घड़े में भी पानी को जब सूर्य की किरणें ऊपर खींच लेती हैं, तब क्या वह अनन्त आकाश में पहुंच कर [illegible] नहीं बन जाता?

आयातोऽपि व्रजति यदुलो याति लोको यथेच्छं,
स्नेहं पीडां स्पृशति न मनो नानुबन्धोऽस्ति यत्र ।
श्रद्धापात्रं जनयति मुदं स्वागतस्याऽपि गच्छन्,
नादायैव व्रजति हृदयं कः प्रियः कोऽप्रियो वा ॥

(७७)

अथायातो व्रजति भगवान् दुःस्थितां मामुपेक्ष्य,
तन् को मार्गो जगति सुमहान् वत्सलो भक्तलोके ।
सन्-स्वाधारं त्यजति न परं स्वात्मना वस्तुजातं,
तेनानन्तं सुरपथमिदं विद्यते व्यापकञ्च ॥

(७८)

कुल्मापा नाऽजनिषत तवैतः प्रतिकान्तिहेतुः,
स्वादोनाम स्पृशति न परं त्यक्तदेहस्य जिह्वाम् ।
निःस्वत्वञ्चाप्यभवदिह नो मुक्तसर्वस्वकस्य,
हर्षोत्कर्षोऽभवदिति यतोऽस्ति प्रयोगो निषिद्धः ॥

(७९)

एते तारा वियति वितताः सन्ति संप्रेक्षणीया,
येषामायुः क्षणिकमणुकं ज्योतिरास्थानमभ्रम् ।
जीवन्त्येते तदपि यदहो भ्राजमाना अजस्रं,
विच्छायानां न खलु भवति प्रस्तुतं तारकत्वम् ॥

अपनी इच्छा से बहुत से लोग आते हैं, चले जाते है। किन्तु जिनके साथ कोई सम्बन्ध न हो, उनके आने से मन को हर्ष और जाने से विषाद का अनुभव नहीं होता। श्रद्धेय व्यक्ति जब सम्मुख आता है तब हर्ष पैदा करता है और वापस लौटते हुए हृदय को लेकर चला जाता है। समझ में नहीं आता कि दोनों में कौन प्रिय है और कौन अप्रिय ?

(७७)

आज भगवान् आये और मुझ दुखियारी की उपेक्षा करके चले गए। तब जगत् में महान् भक्तवत्सल और कौन होगा ? *आकाश अपने आश्रित किसी भी वस्तु को* एक क्षण के लिए भी नहीं ठुकराता—सबको आधार (आश्रय) देता है। इसलिए वह व्यापक है और सुरपथ कहलाता है।

(७८)

भिक्षा बिना लिए तू मुड़ा, इसका कारण उबले हुए नीरस उड़द नहीं थे, क्योंकि जिसने शरीर की सार सम्हाल छोड़ रखी है, उसे जीभ का स्वाद छू नहीं सकता। मेरी सर्वस्वहीनता (निर्धनता) भी तेरे मुड़ने का कारण न थी क्योंकि संसार की सब वस्तुओं से तूने मुंह मोड़ रखा है। ऐसा लगता है कि मेरे हर्ष का अतिरेक ही तेरे मुड़ने का कारण बना। क्योंकि अति प्रयोग सर्वत्र निषिद्ध है।

(७९)

ये दर्शनीय तारे आकाश में फैले हुए हैं। इनका जीवन क्षणिक है, इनमें हलकी सी ज्योति है, शून्य में इन्हे रहना पड़ता है, फिर भी ये निरन्तर चमकते हुए जी रहे हैं। जिनमें चमक न हो, वे वस्तुतः तारे नहीं होते।

नान्तः प्रेक्षा निकटनगनेऽप्यागमोऽगी त्रिमंत्रः,
कूर्मं पश्यन्नमृतममलं तद्गतं नेक्षतेऽपि।
नूनः प्रन्नो व्रजति न लयं व्यस्तुते तद्गतं तत्,
स्थायी प्रेयान् न भवति यतश्चञ्चलप्रेक्षणानाम् ॥

(८१)

यां मन्येऽहं मदयहृदयां मातरं निश्छलात्मा,
सा मामेवं नयति भगवन् ! निग्रहं मन्तु-बुद्धया।
कश्चित् क्रूरो ग्रह इह परिक्रामतीति प्रभाते,
चित्रं प्राचीं स्पृशति तरणी नाधुनाप्यस्तमेति ॥

(८२)

एषा बद्धा नृपति-दुहिता नेति किञ्चिद् विचित्रं,
एषा बद्धा त्वयि कृतमतिश्चित्रमेतद् विशिष्टम्।
भावोद्रेकं लघु गतवती विस्मृतात्मा बभूव,
सा का श्रद्धा न खलु जनयेद् विस्मृतिं स्थूलतायाः ॥

(८३)

स्वर्णाभूषा किमपि न चिरादायसी शृंखलाऽभू-
च्छीर्षे श्यामाः सुविकचकचाः प्रोद्गमं लब्धवन्तः।
मन्ये रूपं विकृतमकृतं जातमस्याः क्षणेन,
यन्न श्रद्धाविरचितमहो गाहनीयं विकल्पैः ॥

आखें खिल रही हैं, किन्तु इनमें अन्तर्ज्योति नहीं—यह कोई नया ही (विना नाम वाला) रोग है। मनुष्य घड़े को देख लेता है, किन्तु उसमें भरे अमृत को नहीं देख पाता। घड़ा (शरीर) नया, पुराना होता है और वाद में फूट (मर) जाता है। उसमें रहने वाला अमृत (आत्मा) दूसरा स्थान खोज लेता है। क्योंकि वहिर्दर्शी का प्रेय कभी स्थिर नहीं होता।

(८१)

भगवन् ! जिसे (धन सेठ की पत्नी मूला को) मैं निश्छल भाव से कोमल हृदय वाली माता समझती थी, उसने भी मुझे अपराधिन मानकर इस प्रकार वन्दी वना दिया। ऐसा लगता है कि कोई क्रूर ग्रह मेरे चारों ओर चक्र लगा रहा है, जो प्रभात में सूर्योदय होने पर भी अभी अस्त नहीं हो रहा है।

(८२)

यह (मैं) राजा की वेटी वन्दी वनी हुई है, इसमें कोई अचरज नहीं। किन्तु अचरज इस वात का है कि तुझ में निष्ठा—श्रद्धा रखने वाली वन्दी वनी हुई है। यह कहती-कहती वह ऐसी श्रद्धा-विभोर वनी कि पिछली सव वातें (दुःख-दर्द) भूल गईं। वह क्या श्रद्धा ? जो स्थूल दुःख-दर्द को भी न भुला सके।

(८३)

चन्दनवाला के शरीर पर जो लोह की जंजीरें थीं, वे तत्क्षण सोने के आभूपण वन गईं। उसके मुंडित शिर पर चमकीले काले केश उग आए। उसका विकृत रूप क्षण भर में वदल गया—सुन्दर व आकर्षक वन गया। यह सव श्रद्धा का प्रभाव था, जाना नहीं जा सकता।

नक्षुर्यंगं भवति गुभगं: क्षालितं यस्य वार्ष-
स्तस्यैवान्तःकरणसहजा वृत्तयः प्रेरयेयुः ।
पत्न्याः कोष्णैः श्वसनपवनैरश्रुधाराभिषिक्तै-
र्धन्येनाऽहो भवजलनिधेर्दुस्तरं वारि तीर्णम् ॥

(८५)

मूका पृथ्वी स्थगनमनिलाः प्रापुराशङ्किताऽभूद्,
भानुर्मौनं गगनमभजद् ह्वोतुमाम्यं दिशोऽक्षि ।
एते भावा अजनि-निधनाः साक्षिणः सन्ति नित्यं,
दृष्टाः शक्तैः प्रकृतिविकला शोष्यमाणा अमीभिः ॥

(८६)

शोषं पृथ्वी नयति पवनो वा द्रवं तापनोऽपि,
व्योम्ना दिग्भिर्भुवनमखिलं स्वोदरे क्वापि नीतम् ।
वाणीमस्या अवितथपथां प्रस्तुतां स्वामिनोऽग्रे,
नाहवातुं ते प्रकृतिविवशा लेभिरे वाचमर्हाम् ॥

(८७)

भक्त्युद्रेकात् स्मृतिमपि तनुं नाप्यकार्षीत् क्षुधाया,
वाञ्छापूर्त्यै सघनमनसा स्थैर्यमालम्भि तस्याः ।
सन्देहेनाऽनुपलमुदयं गच्छताऽभूच्छ्लथा वाक्,
सर्वे सूक्ष्माः परमगुरुताऽभूत् प्रतीक्षा-क्षणानाम् ॥

जिसकी आँखें पवित्र आँसुओं से पखारी हुई हों, उसी के अन्तःकरण की सहज दृढ़ता औरों को जगा सकती है। आश्चर्य है, धन्य सेठ अपनी पत्नी (शालिभद्र की बहन सुभद्रा) के आँसुओं की धार से भीगी हुई श्वास की कुन-कुनी पवन से दुस्तर भव-सागर तर गया।

(८५)

पृथ्वी मूक थी, हवाएँ बन्द थीं, सूर्य आशंकित था, आकाश मौन था और दिशाएँ मुंह छिपाने की टोह में थीं। ये सब ध्रुव पदार्थ (अनादि निधन—आदि अन्त रहित) इस बात के साक्षी हैं और स्वयं इन्होंने देखा भी है कि संसार में समर्थ (सत्तावान्) व्यक्तियों ने निर्बलों का शोषण किया है।

(८६)

पृथ्वी, हवा और सूर्य द्रव वस्तु को सोखते हैं। आकाश और दिशाओं ने सारे संसार को अपने उदर में छुपा रखा है। भगवान् के सामने रखी हुई चन्दनबाला की इस यथार्थ घोषणा को चुनौती देने के लिए इनके (पृथ्वी आदि शोषकों के) पास कोई उचित शब्द न थे, क्योंकि वे अपनी आदत से लाचार थे—शोषण छोड़ना नहीं चाहते थे।

(८७)

भक्ति के उद्रेक से चन्दनबाला को भूख तनिक भी याद नहीं आ रही थी। उसका मन अन्यान्य विषयों से सिमट कर अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए स्थिर हो गया था। भगवान् कहीं दान लिए बिना मुड़ न जाए—इस प्रकार के क्षण-क्षण में पैदा होने वाले सन्देह से उसकी वाणी श्लथ सी हो चली। उसकी और सब चीजें सिमट गईं-सूक्ष्म बन गईं; किन्तु उसके लिए प्रतीक्षा के क्षण बहुत बड़े बने जा रहे थे कि भगवान् कब मेरे हाथ से भिक्षा स्वीकार करें।

आपातेष्टं भवति बहुधाऽनिष्टमन्ते जनानां,
पूर्वानिष्टं किमपि फलतः स्याद् विशिष्टार्थसिद्ध्यै ।
दानोत्साहः क्षण-परिणतोऽजायतापूर्वकोऽस्या,
यत्रापूर्वाशय-परिणतिर्दुर्लभं तत्र किं स्यात् ॥

(८६)

आस्थाबन्धं लघु विदधतौ दार्ढ्यभूमि-प्रतिष्ठं,
हस्तौ शस्तौ यतिगणपतेः प्रस्तुतौ भिक्षितुं तौ ।
याभ्यां मासाः षडिव दिवसैः पञ्चभिः काममूना,
भिक्षातीताः सजलमशनं यापिता विस्मरद्भ्याम् ॥

(९०)

एतौ पाणी सुचिरतपसा कार्श्यमायातवन्तौ,
माषान् वोढुं किमिह गुरुकान् शक्ष्यतश्चापि शक्तौ ।
चिन्तामेतां मनसि दधती विस्मृतिं साऽथ निन्येऽ-
न्त्राणि व्यक्तं स्पृशति हृदयं यन्न गूढं कदाचित् ॥

(९१)

अर्थाः केचिद् ददति सुमहत् किञ्चिदादाय पुण्याः,
केचिद् दत्वाऽपि च न ददते व्यत्ययोऽसौ विधीनाम् ।
तत् पाणिभ्यां विनय-विशदं वस्तु लब्ध्वा नगण्यं,
वस्तुव्रातैः प्रतिफलतया स्वामिनादाप्यगण्यम् ॥

कुछ वस्तुएं प्रारम्भ मे वहुत सुहावनी होती है, किन्तु अन्त में उनका परिणाम अच्छा नहीं होता। कुछ वस्तुएं पहिले सुहावनी नहीं लगतीं, किन्तु उनका परिणाम किसी विशिष्ट उद्देश्य की सीद्धि के लिए होता है। चन्दनवाला को दान देने का उत्साह कुछ प्रतीक्षा करने के कारण ऐसा वढ चला, जैसा पहले कभी नहीं वढा था। जव भावना में विशिष्ट उद्रेक आता है, तव कोई भी चीज दुर्लभ नहीं रह पाती।

(८६)

भगवान् महावीर के वरद हाथ चन्दनवाला के आस्था-वन्ध (गाँठ) को दृढ करते हुए भिक्षा लेने के लिए आगे वढे। जिन्होंने पाच महीने और पच्चीस दिन विना भिक्षा लिए विताए, मानों वे अन्न, जल को भूल गए हों।

(६०)

वहुत तपस्या करने से भगवान् के सुदृढ हाथ कृश हो गए हैं, इसलिए क्या वे उड़द के भोजन का भारी वोझ उठा सकेंगे ? चन्दनवाला ने भगवान् को भोजन देते समय उनके हाथों की चिन्ता तो कर ली, किन्तु ऐसा सोचते वह आतों को भुल गई कि वे तपस्या से कितनी कमजोर हो गई हैं और इस दुष्पाच्य भोजन को भला पचा सकेंगी ? व्यक्त वस्तु हृदय को सहसा छू लेती है, किन्तु अव्यक्त वस्तु उस तक पहुंच नहीं पाती।

(६१)

(६२)

पाणौ दात्र्याः प्रमद-विभव-प्रेरणात्कम्पमानौ,
स्निग्धौ क्वापि व्यथितवृपता मापरूपं वहन्तौ ।
आदातुम्तौ स्ततमचलात् सुस्थिरौ सानुकम्पौ,
सद्योऽकाष्टां हृदयसजलौ शूर्पमापान् वहन्तौ ॥

(६३)

सद्योजातं स्थपुटमखिलं प्रांगणं रत्नवृष्ट्या,
गुप्यद्रन्ध्रं गगनपटलं जातमेतत् प्रतीतम् ।
तर्कक्षेत्रं भवतु सुतरामेष योगानुभाव-
स्तद्भाग्याभ्रं रविरुदगमत् स्पष्टमद्याऽपि तत्तु ॥

(६४)

गाढामिच्छां बहुलसमयेऽपि प्रयत्नैरपूर्णां,
ये जानन्ति स्वमतिरचितां ताड़ितां क्रूरविघ्नैः ।
तेऽर्हा अत्रानुभवितुमिमां वेदनां चन्दनाया-
स्तीव्रान् यत्नांल्लघु-विसृमरां चेतसोऽधीरताञ्च ॥

(६५)

प्राप्तेष्टानां प्रभवति मतौ कोप्यपूर्वः प्रमोद-
स्तस्मिन् मग्ना अपि सुपटवः प्रस्मरन्तीति दुःखम् ।
प्रस्मृत्यैतन्निकृति-कुटिलं कः सुखं प्राप लोके,
दुःखे यस्य स्मृतिरविकला तेन तत्तीर्णमाशु ॥

दुःखस्याङ्को द्रवकृपता द्रावयेयुः परांस्ते,
नैतच्चित्रं भवति परुषः कोऽपि तद्वान् विचित्रम्।
अस्याश्चेतो विसदृशतमं सौकुमार्यं बभाज,
तस्थौ दीर्घं समयमतुलं यत् कठोरं निसर्गात्॥

(६७)

छिन्नो बन्धः करचरणयोर्नात्मनः किन्तु गूढः,
सौन्दर्यं तद् वपुषि हसितं प्राक्तनं नात्मनस्तु।
धारा मृष्टा सकरुणदृशोः स्रोतसो नाऽसुखानाम्,
पश्यन्त्यूर्ध्वं पलमपि न सा निम्नभावेषु मूढा॥

(६८)

पक्वान्नानि प्रचुर-विभवे भुक्तपूर्वाणि राज्ये,
नानाहारश्चरण-पदवीं सेवमानस्य जातः।
स्निग्धा दृष्टेर्नवजलकणैर्हृद्व्यथासंप्रसूतै-
र्याप्युच्चैः स्मरणविषयाः केवलं सन्ति माषाः॥

(६९)

भारं प्राप्य प्रकट-विपदां स्नेहभाजां वियोगं,
चिन्ताज्वालं वहति बहुधा बाष्पधारा बहूनाम्।
क्षुत्-क्षामायाः कथमपि घसेरग्रहाद् भिक्षुणाहि,
श्रद्धाढ्याया नयन-सलिलं स्मार्यमद्यापि भूयः॥

(६६)

आंसू की बूंदे दुःख का चिह्न हैं। वे बूंदें दूसरे व्यक्तियों को द्रवित कर दें,
कोई आश्चर्य नहीं है। किन्तु आश्चर्य यह है कि दुःखी होने पर भी
वित आंसू न बहाएं। चन्दनबाला का हृदय जो लम्बे समय तक दुःख
ने के लिए स्वभाव से कठोर बना रहा, वह आज असाधारण सुकुमार बन
।।

(६७)

हाथ और पैर के बन्धन टूटे, किन्तु आत्मा का बन्धन नहीं टूटा, वह
अब भी मजबूत बना हुआ है। शरीर पर पहले जैसा सौन्दर्य निखर उठा,
न्तु आत्मा का सौन्दर्य अब भी नहीं निखरा। करुणापूर्ण आंखों के आंसुओं की
र पोंछी गई, किन्तु दुःख का स्रोत अब भी नहीं सूखा। चन्दनबाला इस ऊर्ध्व
नि द्वारा निम्न भाव (आंगन में बरसे हुए रत्नों के ढेर) में आसक्त न बनी।

(६८)

भगवान् ने अपने समृद्ध राज-घराने में बहुत भी [illegible] । दीक्षा
ने के बाद भी बहुत तरह का भोजन किया, किन्तु [illegible] । [illegible]
ड़द का भोजन आज भी लोगों के लिए स्मरणीय बना हुआ है [illegible]
। हृदय-व्यथा से टपके हुए आंखों के आंसुओं से [illegible] ।

•

(६९)

पाणी दात्र्याः प्रमद-विभव-प्रेरणात्कम्पमानौ,
स्निग्धौ क्वापि व्यथितपृषता मापयूर्ण वहन्तौ।
आदातुस्तौ दृढतमबलात् सुस्थिरौ सानुकम्पौ,
सद्योऽकाम्ष्टौ हृदयसजलौ सूर्पमापान् वहन्तौ॥

(६३)

सद्योजातं स्थपुटमखिलं प्रांगणं रत्नवृष्ट्या,
त्रुट्यद्बन्धं गगनपटलं जातमेतत् प्रतीतम्।
तर्कक्षेत्रं भवतु सुतरामेष योगानुभाव-
स्तद्भाग्याभ्रं रविरुद्गमत् स्पष्टमद्याऽपि तत्तु॥

(६४)

गाढामिच्छां बहुलसमयेऽपि प्रयत्नैरपूर्णां,
ये जानन्ति स्वमतिरचितां ताड़ितां क्रूरविघ्नैः।
तेऽर्हा अत्रानुभवितुमिमां वेदनां चन्दनाया-
स्तीव्रान् यत्नांछ्रुघु-विसृमरां चेतसोऽधीरताञ्च॥

(६५)

प्राप्तेष्टानां प्रभवति मतौ कोप्यपूर्वः प्रमोद-
स्तस्मिन् मग्ना अपि सुपटवः प्रस्मरन्तीति दुःखम्।
प्रस्मृत्यैतन्निकृति-कुटिलं कः सुखं प्राप लोके,
दुःखे यस्य स्मृतिरविकला तेन तत्तीर्णमाशु॥

तस्यैव

उड़द के छाज को उठाते हुए, हर्षातिरेक से कापते हुए और व्यथा की बूंदों से कहीं भीगे हुए, दान देने वाली चन्दनबाला के हाथों से आदाता (भगवान्) के दृढ़तम बल से स्थिर और दयालु हाथों को हृदय की भांति सजल और छाज के उड़द को उठाने वाला बना दिया।

(आशय यह है कि दान देने के पूर्व उड़द का छाज चन्दनबाला के हाथों में था और दान देने के पश्चात् छाज के उड़द भगवान् के हाथों में आ गए)

(६३)

चन्दनबाला के घर का आगन रत्नों की बरसात से ऊबड-खाबड़ सा हो गया। आकाश के बन्धन टूट पड़े हों, ऐसा लगता था। यह योग का प्रभाव तर्क का विषय हो सकता है किन्तु उसके (चन्दनबाला के) भाग्याकाश में जिस सूर्य का उदय हुआ, (भगवान् ने तीर्थंकर होने के बाद उसे अपनी साध्वीसंघ की प्रमुखा बनाया) वह तो आज भी स्पष्ट है।

(६४)

अपने अन्तर में जगी हुई तीव्र इच्छा, जो क्रूर विघ्नों से प्रताड़ित होकर तरह-तरह के प्रयत्न करने के बावजूद भी बहुत समय तक अपूर्ण रही हो—उसे जो जानते हैं वे ही चन्दनबाला की इस वेदना को, उसके तीव्र प्रयत्नों को और चित्त में शीघ्र फैल जाने वाली अधीरता को जान सकते हैं।

(६५)

प्रिय वस्तु के पा जाने पर मन में एक अपूर्व उल्लास प्रकट होता है। उसकी अनुभूति में बड़े बड़े विचक्षण भी दुःख भुला देते हैं। किन्तु इस कुटिल दुःख को भूल कर संसार में किसने सुख पाया ! जिसे दुःख पल-पल में याद रहा, वही, इसका पार पा सका है।

अश्रुवीणा

(९६)

दुःखम्याक्तो द्रवकरुणता द्रावयेयुः परांस्ते,
नैतच्चित्रं भवति परमः कोऽपि तद्वान् विचित्रम्।
अस्याश्चेतो विसदृशतमं सौकुमार्यं बभाज,
तस्थौ दीर्घं समयमतुलं यत् कठोरं निसर्गात् ॥

(९७)

छिन्नो बन्धः करचरणयोर्नात्मनः किन्तु गूढः,
सौन्दर्यं तद् वपुषि हसितं प्राक्तनं नात्मनस्तु।
धारा सृष्टा सकरुणदृशोः स्रोतसो नाऽसुखानाम्,
पश्यन्त्यूर्ध्वं पलमपि न सा निम्नभावेषु मूढा ॥

(९८)

पक्वान्नानि प्रचुर-विभवे भुक्तपूर्वाणि राज्ये,
नानाहारश्चरण-पदवीं सेव्यमानस्य जातः।
स्निग्धा दृष्टैर्नवजलकणैर्हृद्व्यथासंप्रसूतै-
रद्याप्युच्चैः स्मरणविषयाः केवलं सन्ति माषाः ॥

(९९)

भारं प्राप्य प्रकट-विपदां स्नेहभाजां वियोगं,
चिन्ताज्वालं वहति बहुधा वाष्पधारा बहूनाम्।
क्षुत्-क्षामायाः कथमपि घसेरग्रहाद् भिक्षुणाहि,
श्रद्धाढ्याया नयन-सलिलं स्मार्यमद्यापि भूयः ॥

अश्रवी०

आंसू की बूंदें दुःख का चिह्न हैं। वे बूंदें दूसरे व्यक्तियों को द्रवित कर दें, कोई आश्चर्य नहीं है। किन्तु आश्चर्य यह है कि दुःखी होने पर भी वेत आसू न बहाएं। चन्दनबाला का हृदय जो लम्बे समय तक दुःख ने के लिए स्वभाव से कठोर बना रहा, वह आज असाधारण सुकुमार बन ए।

(६७)

हाथ और पैर के बन्धन टूटे, किन्तु आत्मा का बन्धन नहीं टूटा, वह अब भी मजबूत बना हुआ है। शरीर पर पहले जैसा सौन्दर्य निखर उठा, आत्मा का सौन्दर्य अब भी नहीं निखरा। करुणापूर्ण आंखों के आंसुओं को पोंछी गई, किन्तु दुःख का स्रोत अब भी नहीं सूखा। चन्दनबाला इस ऊर्ध्व द्वारा निम्न भाव (आंगन में बरसे हुए रत्नों के ढेर) में आसक्त न बनी।

(६८)

भगवान् ने अपने समृद्ध राज-घराने में बहुत सी मिठाइयां खाई। दीक्षा के बाद भी बहुत तरह का भोजन किया, किन्तु लोग इन्हें नहीं जानते। वह का भोजन आज भी लोगों के लिए स्मरणीय बना हुआ है, जो चन्दनबाला दय-व्यथा से टपके हुए आंखों के आंसुओं से आर्द्र था।

(६९)

ों का बोझा आ पड़ने पर, प्रिय जनों का वियोग होने बहुत से लोगों के आंखों से अश्रुधारा टपक पड़ती किन्तु तीन दिनों की भूख से दुर्बल पर ... य है, जो एक भिक्षु (भगवान् महावीर) के पड़े थे।

(१००)

जाता यस्मिन् सपदि विफला हावभावा वसानां,
कामं भीमा अपिच मरुतां कष्टपूर्णाः प्रयोगाः।
तस्मिन् स्वस्मिल्लयमुपगते वीतरागे जिनेन्द्रे,
मोघो जातो महति सुतरामश्रुवीणा-निनादः ॥

(१०१)

तेरापन्थः सुविहितगणो मातृभूरस्ति यस्य,
भिक्ष्वाद्यार्यैं विमलमतिभि-र्नीयमानः प्रकर्षम्।
रोहं कालोः प्रवर-तुलसी यं फलाढ्यं करोति,
सोऽहं धन्यो मुनिनथमलः काव्य-लीलामकार्षम् ॥

(१००)

अपने स्वभाव में लीन, महान् वीतराग जिनेन्द्र, भगवान् (महावीर) के पास कामिनियों के हाव-भाव (अङ्ग-चेष्टाएँ) और देवताओं के भीषण उपसर्ग भी असफल रहे, किन्तु चन्दनबाला की अश्रुधारा की ध्वनि भली-भाँति सफल बन गई—उसने अपना इष्ट साध-लिया।

(१०१)

जिस आचारनिष्ठ सन्तों के गण—तेरापन्थ को [illegible] भिक्षु आदि नौ आचार्यों ने उन्नत बनाया, वह जिसकी [illegible] बालमुनि ने जिसे अङ्कुरित किया, आचार्य श्री तुलसी [illegible] वह मैं मुनि नथमल, इस काव्य का सर्जन कर अपने को [illegible]